अप्रैल - जून २००८

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

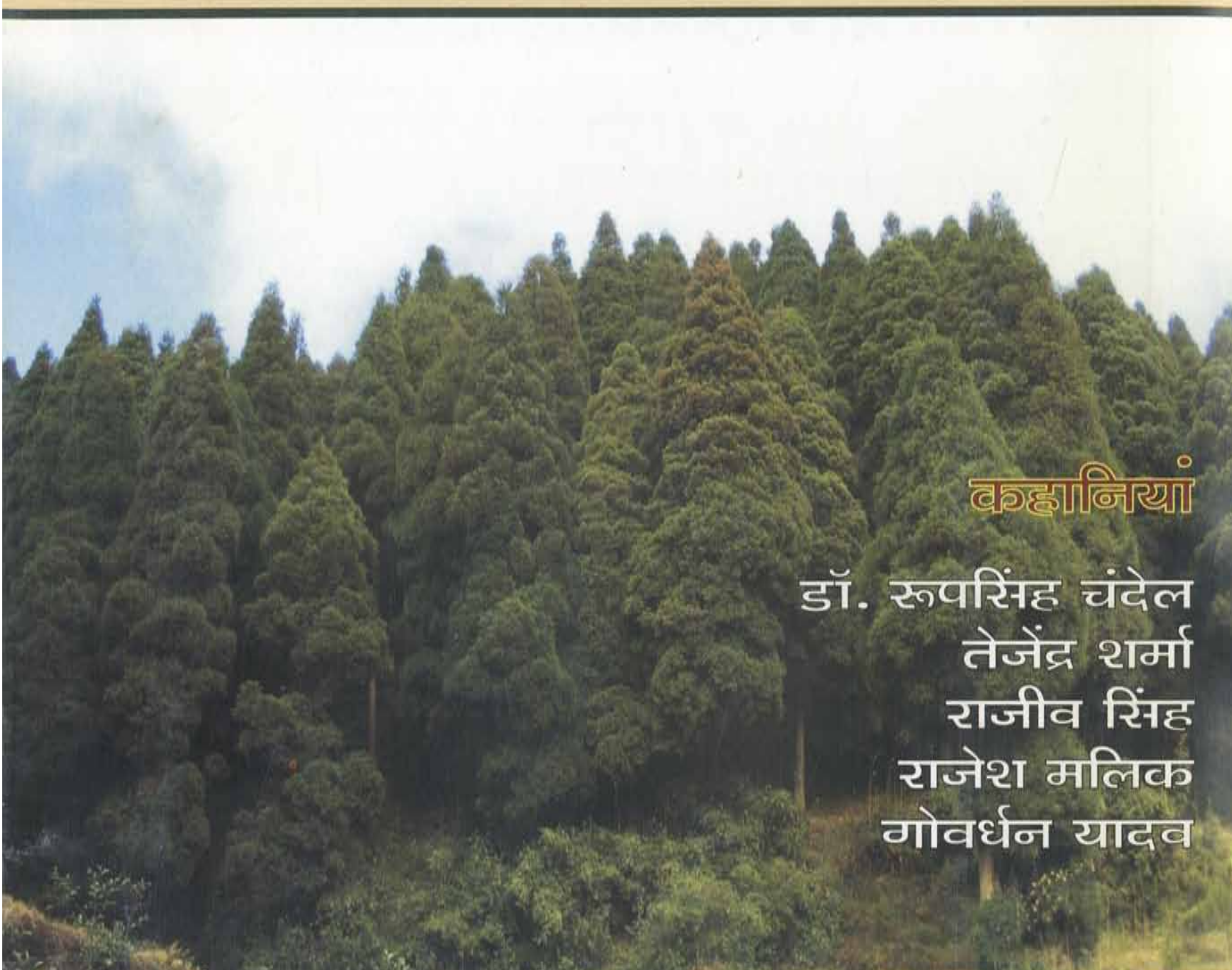

सागर-सीपी
ज्ञान चतुर्वेदी

आमने-सामने
गोवर्धन यादव

१५ रुपये

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

NIVEK AGENCIES

&

WELDWELL SPECIALITY PVT. LTD

A SINGLE SOURCE
FOR
WELDING SOLUTIONS

WE STOCK AND SELL
MAJOR INDIAN AND FOREIGN
BRAND CONSUMABLES
& EQUIPMENTS

104, Acharya Commercial Centre, Dr. C. Gidwani
Road, Chembur, Mumbai – 400 074

Tel: 2558 2746, 2551 5523 & 2550 3270
Fax: 2556 6789, 2556 9513
Email: ccg@weldwell.com
nivek@vsnl.net

____NNNNNNN____

अप्रैल – जून २००६
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●
आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड

कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●
ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१५५४१
e-mail: kathabimb@yahoo.com
(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक
अरुण सक्सेना
फोन : २३६८ ३७७५

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ५ || यह तो वही है ! / डॉ. रूपसिंह चंदेल
|| ९ || बेघर आंखें / तेजेंद्र शर्मा
|| २० || नक़ली-असली / राजीव सिंह
|| २६ || सड़क के उस पार / राजेश मलिक
|| ३० || जंगल / गोवर्धन यादव

लघुकथाएं

|| २९ || असलियत / नरेंद्र कौर छाबड़ा
|| ३३ || फूल हर सिंगार के / डॉ. सुरेंद्र गुप्त
|| ५० || बदलाव / बृजेंद्र अग्निहोत्री
|| ५० || अपनी-अपनी ख़ुशी / डॉ योगेंद्रनाथ शुक्ल
|| ५० || सितारों का खेल, सहानुभूति / राजेंद्र निशेश

ग़ज़लें / कविताएं

|| ८ || ग़ज़लें / मनोज अबोध
|| १९ || जैसे एक दिन कोई आ जाता है / अनुज शर्मा
|| ३२ || अधूरी शब्द यात्राएं / सुशील कुमार
|| ३८ || अब तक ज़िंदा हूं, मैं कुछ नहीं कर सकता / नरेंद्र कुमार 'भारती'
|| ४७ || अब मैं चौंकता नहीं हूं, लंगड़ा व्यक्तित्व / डॉ. किशोर काबरा
|| ४७ || मेघ / शंभु बादल
|| ४८ || इंसान नहीं है हवाएं / प्रबोध कुमार गोविल
|| ४८ || कम है संभावना / केशव शरण
|| ४८ || घर का सपना / ईश्वर सिंह बिष्ट 'ईशोर'
|| ४९ || ग़ज़लें / भगवानदास जैन / संदीप राशिनकर

स्तंभ

|| २ || लेटरबॉक्स
|| ४ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| ३४ || 'आमने-सामने' / गोवर्धन यादव
|| ३९ || 'सागर-सीपी' / डॉ ज्ञान चतुर्वेदी
|| ४१ || 'वातायन' / विजय
|| ४२ || पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण फोटो : *मंजुश्री*
(दार्जिलिंग से मिरिक झील जाते हुए)

लेटर बॉक्स

"कथाबिंब" का अंक मिला. संपादकीय में आपने आरक्षण का मुद्दा उठाया है. हिम्मत का काम है. वी. पी. सिंह का कार्ड अब अर्जुन सिंह ने ले लिया है. फिर देश जलेगा. जले मलबों पर फिर नयी राजनीति शुरू होगी और अर्जुन सिंह प्रधानमंत्री पद के दावेदार होंगे. उन्हें क्या पता कोई एक चिंगारी वी. पी. सिंह की तरह ही उनके घर को जला दे. ऐसी राजनीति की बिसात पर देश को जलना और बंटना लिखा है.

अनिरुद्ध सिन्हा,
गुलज़ार पोखर, मुंगेर (बिहार) ८४२००१

"कथाबिंब" जन.-मार्च'०६ की प्रति प्राप्त. संपादकीय के अंतर्गत आपकी सेवानिवृत्ति के बारे में जानकारी मिली. अब आप अपने समय का उपयोग पूर्णतः साहित्य-सेवा के लिए कर सकेंगे. आपके चिरायु की शुभकामना करता हूं. पत्रिका ने लंबा सफर तय किया है. पत्रिका की यात्रा जारी रहे, ऐसी योग्यता आपमें है.

पत्रिका के दो स्तंभ 'आमने-सामने' तथा 'सागर-सीपी' वस्तुतः साहित्यकारों के संपूर्ण व्यक्तित्व से परिचित कराते हैं. यह पत्रिका के प्रत्येक अंक की उपलब्धि हैं.

कहानियां, कविताएं, लघुकथाएं, समीक्षाएं तो समकालीन परिवेश से अनेक स्तर पर साक्षात्कार करा जाती हैं और पाठकीय आनंद को ऊर्जा प्रदान करती हैं.

डॉ. जनार्दन यादव
नरपतगंज, अररिया (बिहार) ८५४३३५

"कथाबिंब" का जन.-मार्च ०६ अंक मिला. कुछ यात्रा व्यस्तता और कुछ पढ़ने में भी समय लगने के कारण पत्रोत्तर में विलंब हुआ. 'कथाबिंब' का यह अंक मैंने आद्योपांत देखा. इस बार प्रस्तुत सभी कहानियां किसी न किसी सामाजिक समस्या को संवेदना में रचा पचा कर सृजित की हुई अनुभव हुईं और अच्छी लगीं, किंतु दो रचनाएं ज़्यादा छू गयीं. एक है - डॉ. तारीक असलम 'तस्नीम' की 'जेहाद' और दूसरी महावीर रवांल्टा की 'भंडारी उदास क्यों थे?' दोनों आज के यथार्थ को अधिक प्रभावी तरीक़े से व्यंजित करने वाली लगीं. इनके अतिरिक्त श्री क़मर रईस 'बहराइची', श्री सच्चिदानंद इंसान तथा डॉ. शंभुनाथ तिवारी की ग़ज़लें, हीरालाल मिश्र की लघुकथा सशक्त रचनाएं कही जायेंगी. 'सागर-सीपी' के अंतर्गत डॉ. कृष्ण बिहारी सहल का साक्षात्कार रचनाधर्मिता के सार्थक संदर्भों को लेखकीय दायित्व के साथ प्रत्यक्ष करता है. सदैव की तरह इस बार भी प्रस्तुत समीक्षाएं कृति के संदर्भों को विस्तार से विवेचित-मूल्यांकित करती हैं. कुल मिलाकर संपूर्ण संयोजन संतुष्टि प्रदायक है.

डॉ. भगीरथ बड़ोले,
२८६, विवेकानंद कॉलोनी, फ्रीगंज, उज्जैन (म. प्र.) ४५६०१०

"कथाबिंब" का जन.-मार्च ०६ अंक जून में मिल गया. बड़ा हर्ष हुआ कि उसने ६ माह विलंब से चलने की गति, भारतीय रेल की भांति स्पीड बढ़ा अगले स्टेशन तक क़ाफी मेक-अप कर ली. आशा है निकट भविष्य में शीघ्र ही पत्रिका सही समय पर निकलने लगेगी. साधुवाद प्रबंधकीय कार्यशीलता को !

जिस प्रकार सुबह द्वार पर टकटकी लगी रहती है कि समाचार-पत्र गिरे और हम झपट्टा लगा उसे चाट जायें, उसी तरह की प्रतीक्षा 'कथाबिंब' की रहती है कि कब कुछ नया पढ़ने को मिले. विलंब पीड़ादायक हो जाता है.

अंक की सभी रचनाएं स्तरीय हैं, यह समझ में नहीं आता किसको उठाऊं और किसको गिराऊं. श्री प्रबोध कुमार गोविल की छोटी, परंतु मोटी कविता 'प्रेमचंद की याद में', कुछ सोचने पर विवश करती है क्योंकि उसमें कुछ रहस्य छुपा है - वर्तमान साहित्यकारों, पाठकों और विचारकों के लिए.

रा. प्र. अटल,
हर्षालय, पुरानी बस्ती रांझी, जबलपुर ४८२००५

"कथाबिंब" जन.-मार्च ०६ का अंक हमेशा की तरह चुस्त-दुरुस्त, वीणा के कसे तार जैसा - छू लेने से ही गूंज उठे- यानी रचनाएं बड़ी पैनी नज़र से गुज़री हुई. सटीक और पठनीय. नज़र वैज्ञानिक की, हृदय कवि का. अद्‌भुत संगम है ! मेरा साधुवाद लें.

मधु प्रसाद,
२९, गोकुल धाम सोसायटी, कलोल मेहसाणा हाईवे,
चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४

"कथाबिंब" जन.-मार्च ०६ अंक प्राप्त हुआ. इस बार के संपादकीय 'कुछ कही, कुछ अनकही' में ज्वलंत मद्दों को उठाते हुए मूल्यहीन राजनीति के विकृत रूप को प्रस्तुत किया गया है. 'सागर-सीपी' में बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. कृष्ण बिहारी 'सहल' से बातचीत तथा 'वातायन' में रोचक एवं पठनीय सामग्री उपलब्ध करवायी गयी है. महावीर रवांल्टा की कहानी 'भंडारी उदास क्यों थे ?' सेवानिवृत्त हुए अधिकारी के जीवन की सच्चाई को रेखांकित करती है. अमित जांगड़ा की 'रुदन' दादा-पोते के प्यार की कहानी है. पूर्ण शर्मा 'पूरण' की कहानी 'एक स्वप्न का अंत' अत्यंत मार्मिक बन पड़ी है, जिसमें समकालीन समाज के घिनौने परिदृश्य को उभारा गया है. यह कहानी पाठक के मन को उद्वेलित करती है. कविताओं में गोविल की कविता 'प्रेमचंद की याद में' तथा तेजराम शर्मा की 'चला जाऊंगा दूर तक' ध्यान आकृष्ट करती हैं. उच्चस्तरीय, उल्लेखनीय तथा पठनीय सामग्री साहित्य जगत को परोसने के लिए संपादक निश्चय ही बधाई के पात्र हैं.

डॉ. सुरेंद्र गुप्त,
आर. एन.-७, महेश नगर, अंबाला छावनी (हरि.) १३३००१

❀ पहली बार 'कथा' में 'बिंब' (जन.-मार्च ०६) देखा. पत्रिका-आवरण ही एक नज़र में किसी को भी सम्मोहित करने का माद्दा रखता है. किसी ने कहा है पहाड़ों की ओर मौन देखनेवाला 'दार्शनिक' और समुंदर को मौन ताकनेवाला 'कवि' होता है - अब आपने तो समुंदर के किनारे बैठकर पहाड़ों को अपने पास बुला लिया, क्या कहने हैं !

संपादकीय में आपने प्राय: सभी ज्वलंत एवं वांछित पहलुओं को उकेरा है जो एक स्वस्थ सामयिक सोच की पत्रिका के संपादक से अपेक्षित भी है. कहानी 'चैटिंग' में कुंवर आमोद ने जहां अप्रत्याशित अंत देकर पाठक को हतप्रभ किया है वहीं 'एक स्वप्न का अंत' में पूर्ण शर्मा इन्सान के ज़मीर को झकझोरने में सफल रहे हैं.

'आमने/सामने' मेरे ज्ञान में, किसी पत्रिका में पहली बार किया गया अनुपम और अनूठा प्रयोग है. आनंद बिल्थरे की लघुकथा 'युग आवश्यकता' एक अच्छी रचना बन पड़ी है.

शायद यह लिखे बिना पत्र पूरा न होगा कि फॉर्म ४ दो बार, पृष्ठ ४२ एवं ४६ पर और पृष्ठ ३५ की चार लाइनें 'जहां से सूरज...पास नहीं है.' अगले पृष्ठ पर दोबारा छप गयी हैं (यह त्रुटि निकालना नहीं है - अन्यथा न लेंगे), सिर्फ़ आगे के लिए एक चैतन्यता-सूचक है ताकि जगह के अपव्यय के साथ-साथ आपका श्रम निरर्थक न हो.

✣ के. पी. सक्सेना 'दूसरे',
श्रीशांतिनाथ नगर, टाटीबंध, रायपुर

❀ "कथाबिंब" का जन.-मार्च ०६ अंक प्राप्त हुआ. आवरण इस बार भी आकर्षक रहा.

डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम' की कहानी 'जेहाद' में अपने नगर जम्मू का वृत्तांत पढ़कर सुखद अनुभूति हुई. कहानी के कथ्य के संदर्भ में मैं कहना चाहूंगा कि देश में आज हिंदू-मुस्लिम बिरादरी के बीच कोई बहुत गंभीर मसले लगभग नहीं हैं, लेकिन इन दोनों के बीच मसले पैदा करने का कार्य पाकिस्तान की षड़यंत्रकारी ऐजेंसी आई.एस.आई. कर रही है. लेखक ने अपनी कहानी में भूलकर भी आई.एस.आई. का कहीं उल्लेख तक नहीं किया है. सारे फ़साद की जड़ यह ऐजेंसी ही तो है. एक बात और, अपनी कहानी में डॉ. 'तस्नीम' आख़िर कहना क्या चाहते हैं, यह अंत तक स्पष्ट नहीं हो सका.

हर बार की तरह आपका संपादकीय इस बार भी दमदार है. लघुकथाएं एकदम सपाट रहती आ रही हैं. अर्थपूर्ण तथा तीखी लघुकथाओं का चयन किया करें.

'हमक़दम लघु-पत्रिकाएं' स्तंभ के चक्कर में हर अंक के दो पन्ने बेकार कर दिये जाते हैं. बेहतर यह रहेगा कि वर्ष भर में केवल एक ही बार ये पन्ने प्रकाशित किये जायें.

✣ कृष्ण शर्मा,
१५२/११९, पक्की ढक्की, जम्मू १८०००१

❀ "कथाबिंब" का जन.-मार्च ०६ अंक श्री कमलेश भारतीय जी ('दैनिक ट्रिब्यून' के वरिष्ठ संपादक) के निवास स्थान से मिला. मैं उनसे मिलने गयी थी, उस समय वे कहीं बाहर गये हुए थे. उनकी प्रतीक्षा के बोझिल क्षणों को दूर करने के लिए मेज़ के नीचे रखी पत्रिका उठा कर पढ़ने लगी व पढ़ते-पढ़ते इतना खो गयी कि समय का ध्यान नहीं रहा और उनसे यह पत्रिका मांग कर घर ले आयी ताकि पूरी पढ़ सकूं. पत्रिका प्रथम पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक पठनीय, रोचक व शिक्षाप्रद है. एक-एक अक्षर मन को आकर्षित करता है, प्रभावित करता है तथा अपनी गहरी छाप छोड़ता है. कहानियां -'जेहाद', 'रूदन' और 'एक स्वप्न का अंत' बिल्कुल नयी शैली में हैं व यथार्थ का सटीक चित्रण करती हुई मन-मस्तिष्क में कहीं ठहर सी जाती हैं. लेखकों को बधाई. महावीर रवांल्टा की कहानी 'भंडारी उदास क्यों थे ?' सचमुच सोचने पर विवश कर गयी दिमाग़ को व मन को उदास कर गयी. बहुत ही सशक्त रचना है यह. इनकी लेखनी को सलाम ! 'चला जाऊंगा दूर तक', 'अंगूठी', 'विश्वबोध' कविताएं मन को मोह गयीं व बार-बार पढ़ीं और गुनीं. कुल मिलाकर एक उच्चकोटि के साहित्यिक, संग्रहणीय व सराहनीय अंक के लिए आपको बहुत-बहुत बधाई.

✣ मीनाक्षी जिजीविषा,
१ ए / २९ ए, एन. आई. टी., फरीदाबाद

❀ "कथाबिंब" का जन.-मार्च ०६ अंक प्राप्त हुआ. राष्ट्रीय स्तर के अफ़साना-निगार डॉ. देवेंद्र सिंह मेरे अच्छे मित्रों में से हैं. इसी शहर के हैं. 'कथाबिंब' द्वारा उन्हें पुरस्कार से नवाज़ा गया है, हम शहरवासियों के लिए यक़ीनन फ़ख्र की बात है.

इस अंक की कहानियां - 'जेहाद' (डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'), रूदन (अमित जांगड़ा), 'एक स्वप्न का अंत' (पूर्ण शर्मा 'पूरण'), 'चैटिंग' (कुंवर आमोद) व 'भंडारी उदास क्यों थे ?' (महावीर रवांल्टा) - बहुत ही अच्छी लगीं. डॉ. क़मर रईस की ग़ज़ल प्यारी लगी. शशिभूषण बड़ोनी का अंगूठी गीत व हितेश व्यास का 'विश्व-बोध' अच्छा लगा. आपका 'कुछ कही, कुछ अनकही' गागर में सागर लगा.

✣ सच्चिदानंद इंसान,
सहारा मिशन स्कूल, मुचीचक, भागलपुर-८१२००१

❀ "कथाबिंब" कुछ नियमित हुई है, ऐसा लगता है. बीच के कई अंक नहीं मिले. हो सकता है यह डाक की गड़बड़ी के कारण हो. इस पत्रिका की पाठक प्रतीक्षा करते हैं - यह स्पष्ट हुआ है. साफ़-सुथरी एवं स्तरीय रचनाओं के वैविध्य को पूरी गरिमा के साथ परोसने में "कथाबिंब" ने सीमाचिन्ह स्थापित किया है.

✣ डॉ. किशोर काबरा,
१८२१, गुजरात हाउसिंग, चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४

(कुछ और पत्रों के लिए कृपया पृष्ठ-५१ देखें.)

कुछ कही, कुछ अनकही

'कथाबिंब' का यह अंक वर्ष २००६ का दूसरा अंक है. अंक-दर-अंक हमारा प्रयास रहता है कि पाठकों को कुछ नया परोसा जाये और हर अंक में प्रस्तुत सामग्री का सीधा जुड़ाव हमारे वर्तमान सरोकारों से हो. इसी नीति के तहत प्रकाशन के लिए आयी बहुत सारी रचनाओं को हमें लौटाना पड़ता है. हमारा यह दावा कभी भी नहीं होता कि 'कथाबिंब' द्वारा अस्वीकृत रचना किसी अन्य पत्रिका में भी स्थान पाने योग्य नहीं है, क्योंकि हर छोटी-बड़ी पत्रिका अपनी प्रकृति के अनुकूल ही रचनाओं का चयन करती है. 'कथाबिंब' की शुरुआत नये लेखकों को मंच प्रदान करने के उद्देश्य से की गयी थी, इसके चलते बहुत बार रचनाओं को परिमार्जित करके भी प्रकाशित किया जाता है या कभी-कभी अपेक्षित संशोधन के सुझाव भी दिये जाते हैं. हां, लेखकों से हमारा यह आग्रह अवश्य होता है कि वे अपनी अप्रकाशित रचनाएं ही प्रकाशनार्थ भेजें. कुछ रचनाकार अपनी लघुकथाएं, ग़ज़लें, कविताएं आदि हमें थोक में भेज देते हैं. साथ में न कोई पत्र होता है और न ही कोई अन्य जानकारी. ज़ाहिर है कि ऐसी रचनाओं को चयन प्रक्रिया का हिस्सा नहीं बनाया जा सकता क्योंकि ये ही रचनाएं अन्य पत्रिकाओं को भी भेजी गयी होती हैं. इन सब सावधानियों के बावजूद भी कभी-कभी 'कथाबिंब' का कोई सतर्क पाठक बता ही देता है कि अमुक रचना कौन सी दूसरी पत्रिका में भी देखने में आयी थी. दरअसल यह ज़िम्मेदारी लेखक की ही होनी चाहिए कि एक पत्रिका से स्वीकृति आने पर दूसरी पत्रिका को इसकी सूचना तुरंत दे दे. दोहराव से बचने के लिए यही एक स्वस्थ परंपरा हो सकती है.

'कथाबिंब' का प्रकाशन नियमित व समय से हो सके इस प्रयास की दिशा में *'संस्कृति संरक्षण संस्था'* नाम की एक ट्रस्ट का अभी हाल में ही पंजीकरण कराया गया है. इस संस्था के तत्वावधान में साहित्य, भाषा, पुस्तकालय, संगीत, नृत्य व अन्य ललित कलाओं से संबंधित अनेक गतिविधियां चलायी जायेंगी. 'कथाबिंब' का प्रकाशन इसी संस्था का एक अंग होगा. संस्था से जुड़ी जानकारी 'कथाबिंब' में समय-समय पर दी जाती रहेगी.

●

अब कुछ इस अंक की कहानियों के बारे में - पहली कहानी 'यह तो वही है !' के माध्यम से डॉ. रूप सिंह चंदेल ने एक तथाकथित प्रगतिशील व्यक्ति के असली चेहरे को दिखाने का प्रयास किया. लंदन निवासी तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'बेघर आंखें' का नायक जब किराये पर दिया अपना मकान खाली कराना चाहता है तो उसे तमाम दिक़्क़तों का सामना करना पड़ता है. नायक को बार-बार लगता है कि उसकी स्वर्गीय पत्नी घर में कहीं आस-पास है. बच्चों के माध्यम से 'नक़ली-असली' में राजीव सिंह ने कई बिंबों द्वारा बहुत कुछ कहने का प्रयास किया है. 'सड़क के उस पार' (राजेश मलिक) सर्वथा एक नये लेखक की कहानी है. यह एक छोटी बालिका की कहानी है जो घर-परिवार की तंग हालत से उबरने के लिए बिना यह समझे कि सड़क के उस पार क्या है, उस पार जाना चाहती है. गोवर्धन यादव की कहानी 'जंगल' स्वार्थवश आदमियों के अंदर उग आने वाले जंगल की कहानी है जहां सभी रिश्ते अर्थहीन हो जाते हैं.

●

दो अंकों के बीच की समयावधि के दौरान इतना कुछ घट जाता है जिससे हमारे वर्तमान सरोकार संबद्ध होते हैं, हमारा दैनंदिन जीवन प्रभावित होता है. क़मर तोड़ महंगाई, भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी, जातिवाद, बिजली-पानी की समस्या इससे कहीं कोई निज़ात नहीं है. साल दर साल वही घिसे-पिटे वायदे और आश्वासन. किंतु आज की सबसे भीषण समस्या है आतंकवाद जिससे निपटने के लिए हमें बहुत अधिक गंभीरता से कारगर क़दम शीघ्र उठाने होंगे. बंबई में ११ मिनट में ११ जुलाई (सातवां महीना) को पश्चिम रेल्वे की लोकल ट्रेनों के पहले दर्ज़े के डिब्बों में किये गये ७ विस्फोट बहुत ही योजनाबद्ध तरीक़े से किये गये जिसमें १८७ लोगों की मौत हुई और लगभग ८०० लोग घायल हुए. अमरीका में ११ सितंबर को 'वर्ल्ड ट्रेड सेंटर' पर हुए हवाई हमले की तारीख़ को संक्षेप में '११/९' लिखा जाता है, इसी तरह अयोध्या में राम लला के मंदिर में हुए विस्फोटों के लिए ५/७ और तुरंत बाद लंदन में हुए धमाकों के लिए ७/७ का प्रयोग किया जाता है. पिछले वर्ष मुंबई में बादल फटने के दिन को भी २६/७ के रूप में याद किया जाता है. किंतु इस साल हुए ट्रेन विस्फोटों की तारीख़ को '७/११' कहे जाने के पीछे का 'लॉजिक' समझ में नहीं आता !

बहरहाल, डेढ़ महीने बाद तक यह नहीं पता चल सका है कि किस संगठन ने ऐसा घिनौना काम किया है. सिर्फ़ अटकलें लगायी जा रही हैं. विस्फोटों में किस तरह की सामग्री और किस तरह की तकनीकी का प्रयोग हुआ इसके बारे में पक्के तौर पर कुछ भी पता नहीं लग पाया है. बड़े पैमाने पर पकड़-धकड़ जारी है. रोज़ अनेक नये नाम सामने आ रहे हैं. इससे पता लगता है कि पूरे देश में विरोधी गतिविधियों में कितनी बड़ी संख्या में लोग लिप्त हैं. हर शहर में एक 'मॉड्यूल' मौज़ूद है. ऐसा नहीं है कि ये सभी लोग ग़रीब तबके के अशिक्षित, गुमराह और बेरोज़गार लोग हैं - इनमें डॉक्टर, कंप्यूटर इंजीनियर और उच्च शिक्षा प्राप्त लोग भी शामिल हैं.

जिन लोगों ने इतनी सूझ-बूझ से योजना बनायी तो क्या उन्होंने पहले से ही देश से बाहर जाने का इंतज़ाम नहीं कर लिया होगा !

(कृपया शेष भाग पृष्ठ-५३ पर देखें)

कहानी

यह तो वही है !

अख़बार का दूसरा पेज खोलते ही पेज के बायी ओर नीचे ब्लॉक में छपे समाचार और चित्र को देख रवि बाबू चौंके थे. उन्हें लगा आंखें धोखा खा रही हैं. 'यह उस व्यक्ति का चित्र नहीं हो सकता. एक ही शक्ल के दो या दो से अधिक लोग होते हैं. यह निश्चित ही उसका हमशक्ल होगा.' उन्होंने मोटे लेंस के चश्मे को चार बार उतारा, साफ़ किया, चढ़ाया और ध्यानपूर्वक चित्र देखने लगे. किसी बड़े हॉल में बैठे लगभग पचास लोग. माईक पर झुका जो व्यक्ति बोलता हुआ दिख रहा था उसके वैसी ही लेनिनकट सफ़ेद दाढ़ी थी जैसी उस व्यक्ति के थी, जिसे वे पचीस वर्षों से जानते थे. उसके बाल भी वैसे ही सफ़ेद थे और ऐसी प्रतीति दे रहे थे कि मानो उसने 'विग' लगा रखा था. उससे वे जब भी कहीं मिले, उन्हें उसके बाल कभी स्वाभाविक नहीं लगे थे. उन्हें सदैव यही लगा कि वह निश्चित ही गंजा होगा, जिसकी असलियत उसकी पत्नी और बच्चे ही जानते होंगे. संभव है वह सोते समय भी 'विग' लगाकर सोता हो, लेकिन दाढ़ी को लेकर वे असमंजस में थे. वे सोचते, संभव है वह दाढ़ी भी नक़ली चिपका लेता हो, अपने को भीड़ से अलग दिखलाने के लिए. एक बार उसकी पत्नी सुलोचना ने उनसे कहा था, "रवि बाबू, शिव के दाढ़ी-बाल से कोई भी उसकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता."

कुछ देर तक मंद मुस्कराने के बाद वे बोले थे - "शिव के साथ आपके विवाह का रहस्य आज..." लेकिन कुछ सोच वे चुप रह गये थे.

लेकिन सुलोचना चुप न रही थी. प्रफुल्लित स्वर में बोली थी, "रवि बाबू, उस दिन बीस दिसंबर का दिन था. कमानी में बिरजू महाराज का कार्यक्रम था. मैं अपनी सहेली विनीता जिसे हम विनी कहते हैं, उसे आप जानते हैं, के साथ थी. हम कमानी के गेट के पास फुटपाथ पर थे कि सामने से शिव आता दिखा था. पैंट पर काला ओवर कोट, सांवले चेहरे पर दूर से ही चमकती दाढ़ी और सिर पर बालों का टोकरा. सफ़ेद-बिल्कुल भूहा जैसे बाल. कंधे पर लटकता थैला..., आप समझ सकते हैं कि सातवें-आठवें दशक में कैसे थैले लटकाकर चलने का फ़ैशन था युवाओं में..., मैं तो अपलक देखती रह गयी थी उसे. क़द नाटा, लेकिन मुझे लगा था, आप हंसेंगे नहीं रवि बाबू," उसने उनके चेहरे पर नज़रें गड़ा दी थीं, "सच में वह मुझे लेनिन जैसा लगा था और बस... मैं...." देर तक अतीत सुलोचना की आंखों में फड़फड़ाता रहा था.

'यू नो रवि बाबू, मैं तो सुध-बुध ही खो बैठी थी पीछे मुड़-मुड़कर शिव को देखती गेट की ओर खिसक रही थी. गति मंद हो गयी थी. विनी ने शायद यह भांप लिया था. वह रुक गयी और बोली थी, "सुलोचना मैं तुम्हारा परिचय करवा दूं."

"किससे ?" मैं नहीं समझ पायी थी कि वह किससे परिचय करवाने की बात कह रही थी.

"तभी शिव.. पूरा नाम तो आप जानते ही हैं... शिवमान मोहन... पास आ पहुंचा था. विनी उसे जानती थी. उसने परिचय करवाया, 'मेरे भइया के मित्र हैं. कबीर पर काम कर रहे हैं. एक कॉलेज में हिंदी प्राध्यापक हैं." परिचय के दौरान मैं ज़मीन पर गड़ी जा रही महसूस करती रही थी, फिर भी कनख़ियों से शिव को देखती रही थी. और उस दिन के बाद..."

डॉ. रूपसिंह चंदेल

उसके बाद की कहानी रवि बाबू जानते थे.

लेकिन माईक पर झुका हुआ व्यक्ति तो सर्वहारा की चर्चा कर रहा है... समाचार का शीर्षक तो यही कह रहा था. जबकि उन्होंने जितना शिवमान मोहन को जाना था उसके अनुसार उसका सर्वहारा वर्ग से दूर-दूर का रिश्ता नहीं था.

अखबार सामने फैला रहा और रविबाबू कुछ देर के लिए अतीत के अंधेरे आकाश में विचरण करने लगे थे.

हिमालय की पहाड़ियों पर बैठे अपने अस्त्र-शस्त्र तैयार करने में व्यस्त शीतलहर के दिल्ली की ओर प्रस्थान करने में अभी कुछ समय था. वह १९७० नवंबर का एक दिन था. कुछ महीनों की मुलाक़ातों के बाद सुलोचना शिव के ईस्ट पटेल नगर के किराये के मकान में शिफ्ट हो गयी थी. उससे पहले वह विनी के साथ रहती थी. विनी भाई के साथ रहती भी थी और नहीं भी. एक ही मकान में विनी ने भाई से अलग दो कमरे किराये पर ले रखे थे. विनी एक कॉलेज में तीन वर्षों से एडहॉक पढ़ा रही थी. उसने ऐसा इसलिए नहीं किया था कि भाई या भाभी से उसका झगड़ा था. ऐसा दो कारणों से था. वह देर रात तक पढ़ती थी. सुबह देर से उठती. कॉलेज सायं का था. वह नहीं चाहती थी कि वह घर के कामों में बिना हाथ बटाये कोई सुविधा स्वीकार करे. भाभी को क्यों कष्ट दे, जिन्हें वह सुबह पांच बजे से भाई-

बच्चों की तीमारदारी और दूसरे कामों में थकता देखती थी और उन पर तरस खाती थी. उसने भाई की प्रगतिशीलता का लाभ उठाते हुए स्वयं यह प्रस्ताव किया था कि उस मकान के ख़ाली दो कमरों में, यदि मकान मालिक उन्हें किराये पर देना स्वीकार कर ले तो, वह शिफ्ट हो जाये, जिससे अपना शोध कार्य पूरा करने में उसे सुविधा होगी. उन दो कमरों के साथ किचन भी था. भाई की स्वीकृति तो मिली ही थी, मकान मालिक भी तैयार हो गया था. कुछ दिनों बाद सुलोचना भी उसके साथ आकर रहने लगी थी.

❐

दरअसल दोनों ने लखनऊ विश्वविद्यालय से साथ में हिंदी में एम.ए. किया था. सुलोचना का घर अमीनाबाद में था, जबकि विनी का अलीगंज में. एक प्रकार से मिडिल क्लास से वे साथ थीं. सुलोचना भी नौकरी के लिए हाथ पैर मार रही थी कि तभी उसका परिचय शिवमान मोहन से हो गया. विनी सुलोचना के शिव के साथ जा रहने के विरुद्ध थी. "शादी कर लो, फिर जाकर रहो. तुम्हारे घरवालों को मैं जाकर मना लूंगी. शिव के घरवालों को मैं नहीं जानती. वे शायद बलिया के किसी गांव में रहते हैं. सुलोचना, किसी को समझने के लिए कुछ महीने पर्याप्त नहीं होते..."

"यही तुम्हारी प्रगतिशीलता है ?" उखड़ गयी थी सुलोचना, "शादी करने के लिए ही साथ रहने जा रही हूं. पहले न सही, दस दिन, दस महीने बाद सही. फिर, किसी को समझने के लिए महीनों की दरकार नहीं होती... विनी, कुछ क्षण ही पर्याप्त होते हैं."

सुलोचना के उत्तर से अचंभित थी विनीता. समझ नहीं पा रही थी कि जो कुछ वह संकेत में कहना चाह रही थी उसे स्पष्ट कैसे करे. वह चिंतित हो उठी थी. विचारों के बवंडर मस्तिष्क में हहराते रहे थे. काफ़ी देर बाद वह बोली थी, "कुछ दिन और प्रतीक्षा कर लेने में क्षति नहीं है सुलोचना. भावुकता में हित कम, अहित ही अधिक होता है. समझ से काम लो."

"विनी, तुम मेरे साथ पढ़ी-लिखी. माना कि विद्यार्थियों को पढ़ा रही हो... कुछ अधिक अक़्ल आ गयी होगी, लेकिन..."

तिलमिला उठी थी विनी. संयम टूट गया था, फिर भी सुस्थिर स्वर में बोली थी, "सुलोचना तुम्हारा जीवन है, जैसा चाहो जियो लेकिन मित्रता का तक़ाज़ा है कि मैं तुम्हें बता दूं..." क्षण भर के लिए रुकी वह, सुलोचना के चेहरे पर दृष्टि डाली थी, फिर बोली थी, "तुमसे पहले भी शिव के साथ गौरांगी नाम की एक लड़की रहती थी. पहले वह विश्वविद्यालय होस्टल में रहती थी. पैरेंट्स पटना में थे. यह दो वर्ष पहले की बात है. गौरांगी पी-एच. डी. की छात्रा थी. वह कहानियां भी लिखती थी. सारिका, साप्ताहिक हिंदुस्तान और धर्मयुग में उसकी कहानियां प्रकाशित हो चुकी थीं. उसकी कहानियां पढ़कर शिव उसे खोजता उसके होस्टल पहुंचा था. कौन अपनी रचनाओं की प्रशंसा सुनकर प्रमुदित नहीं होता ! वह भी नया रचनाकार. शिव की बातों से वह प्रभावित हुई थी और... और तुम्हारी तरह कुछ ही महीनों में वह शिव के इसी मकान में रहने जा पहुंची थी उसके साथ. बेचारी गौरांगी", भावुक हो उठी थी विनी. लंबी आह भरकर बोली थी, "उसका भाई तब हिंदू कॉलेज में पढ़ता था. आज वह भी शोध कर रहा है. उसने मां-पिता को बुला लिया था. बड़ा हंगामा हुआ था. गौरांगी को वे समझा नहीं पाये थे. लौट गये थे वे पटना हताश-निराश."

"और एक वर्ष शिवमान मोहन के साथ रहने के बाद होस्टल लौट आयी थी गौरांगी. मित्रों में खुस-फुसाहट थी उसके लौटने पर. शायद झगड़ा...मनमुटाव... 'जूठकर परे खिसका दिया' जैसे डायलॉग हवा में तैरने लगे थे, लेकिन हर कुचर्चा पर गौरांगी ने विराम लगाते हुए मित्रों से कहा था, "शिव को दो माह के लिए बाहर जाना है. मैं स्वेच्छा से यहां आयी हूं. उसके बिना वहां अकेली रहना नहीं चाहती थी. और यह बताते हुए न वह दुखी थी न भावुक. बिल्कुल तटस्थ थी वह."

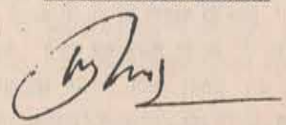

१२ मार्च, १९५१ नौगवां (कानपुर जनपद)

लेखन : *पांच उपन्यास, जिनमें 'रमला बहू', 'पाथर टीला', और 'नटसार' चर्चित. 'हारा हुआ आदमी', 'आदमख़ोर तथा अन्य कहानियां', 'आख़िरी ख़त', और 'चौपालें चुप हैं,' चर्चित कहानी संग्रहों सहित दस कहानी संग्रह, तीन किशोर उपन्यास, दस बाल कहानी संग्रह, लघुकथा संग्रह, यात्रा संस्मरण सहित कुल छत्तीस पुस्तकें.*

विशेष : *लियो तोलस्तॉय के अंतिम और अब तक हिंदी में अप्रकाशित अप्रतिम उपन्यास 'हाजी मुराद' का अनुवाद जो 'संवाद प्रकाशन', मेरठ से शीघ्र प्रकाश्य.*

"शिव कहीं गया भी था. लेकिन पंद्रह दिन बाद लौट भी आया था. परंतु वह गौरांगी से मिलने नहीं आया था. न ही वह विश्वविद्यालय की ओर आया. गौरांगी के किसी मित्र ने उसे कनॉट प्लेस में देखा. गौरांगी को विश्वास नहीं हुआ. वह उसके निवास पर गयी. वह मिला और उसने उसे आश्वस्त किया कि उसे मकान बदलना है. अच्छा मकान किराये पर लेकर वह शीघ्र ही गौरांगी को साथ ले आयेगा और वे किसी मंदिर में शादी कर लेंगे. लेकिन उसका मकान बदलना टलता रहा और गौरांगी की परेशानी बढ़ती गयी थी. और एक दिन... होस्टल के कमरे के पंखे से लटककर उसने आत्महत्या कर ली थी. उसने जो सुसाइड नोट छोड़ा था, उसमें लिखा था, "अपनी आत्महत्या के लिए मैं स्वयं ज़िम्मेदार हूं." शिव कुछ दिनों तक परेशान तो रहा था. पुलिस उससे बार-बार पूछ-ताछ करती रही थी लेकिन किसी प्रमाण के अभाव में वह बच गया था.

"पोस्ट मार्टम रपट में गौरांगी के गर्भवती होने की पुष्टि हुई थी. पांच माह का गर्भ था उसे." बात समाप्त कर विनी ने प्रश्नात्मक भाव से सुलोचना की ओर देखा था.

"शिव ने यह सब बता दिया है." ठंडे स्वर में सुलोचना बोली थी, "विनी, मैं गौरांगी नहीं हूं. उसने यदि मेरे साथ विश्वासघात किया तो मैं नहीं वही आत्महत्या करेगा ?"

विनी ने मौन धारण करना ही उचित समझा था और उसी शाम सुलोचना शिवमान मोहन के साथ चली गयी थी.

❒

लेकिन जैसा कि सुलोचना ने कहा था, वह गौरांगी की भांति कमज़ोर नहीं थी. शिव को उससे विवाह करना पड़ा था. और शिव भी जानता था कि उसने कोई ग़लत निर्णय नहीं किया था. शिव के साथ जाने से पूर्व ही सुलोचना को गृहमंत्रालय में 'असिस्टेंट' के पद के लिए चयन-पत्र मिल चुका था. उसके लिए दोहरी ख़ुशी थी. शिव के साथ विवाह के निर्णय पर घरवालों ने विरोध किया था. बीस वर्षों तक उनसे संबंध नहीं रहे थे. इस दौरान मां की मृत्यु हुई थी. सुलोचना नौकरी में और दोनों बेटों के पालन-पोषण में व्यस्त रही थी. बीस वर्षों बाद उसके दोनों छोटे भाई उससे मिलने दिल्ली आये थे. तब वह पटेल नगर के बजाय वैशाली अपने मकान में पहुंच चुकी थी. लखनऊ से तार पुनः जुड़ गये थे. शिव के साथ वह पिता से मिल आयी थी और उसने रवि बाबू को बताया था कि शिव से मिलकर उसके पिता प्रसन्न हुए थे. एक सप्ताह दोनों बच्चों के साथ वहां रहे थे.

अगले पंद्रह वर्षों में सुलोचना के पिता की आर्थिक स्थिति ख़राब होती गयी थी. दोनों भाई बेकार थे. उनकी शादी न कर पाने की चिंता थी. बेकार और फ्रस्ट्रेटेड भाई प्रायः पिता से झगड़ते रहते थे. पिता की आय का स्रोत उत्तर प्रदेश खाद्य निगम से निदेशक के रूप में अवकाश पाने के बाद मिलनेवाली पेंशन थी और था किरायेदारों से मिलनेवाला पैसा, जो न के बराबर था. घर में कलह का वातावरण था.

शिव और सुलोचना बच्चों की ज़िम्मेदारियों से मुक्त हो चुके थे. दोनों बेटे बंगलौर में इंजीनियर थे. दोनों की अपनी नौकरी थी. संपन्नता उनके आगे-पीछे घूमती थी. अचानक पिता बीमार हो गये थे. उनके करुण पत्र से अभिभूत सुलोचना शिव के साथ लखनऊ गयी थी और दोनों पूरे साढ़े तीन महीने वहां रहे थे. नौ मार्च से तेईस जून तक. मुक्तहस्त हो शिव ने ससुर की सेवा में पैसा ख़र्च किया था. प्रसन्न थे सुलोचना के पिता प्रतापनारायण.

और वे सुलोचना और शिव से इतना प्रसन्न हुए थे कि हवेलीनुमा मकान उन्होंने अपने बाद केवल देखभाल करने के लिए सुलोचना के नाम कर दिया था. भाइयों को पता चला तो गृहकलह ने रौद्र रूप ले लिया. दिनभर युद्ध की सी स्थिति रहने लगी. शिव और सुलोचना पिता की ओर से मोर्चा संभाले रहते. लेकिन पिता मोर्चा हारते जा रहे थे. वह और अधिक बीमार होते गये थे.

शिव और सुलोचना चौबीस को दिल्ली लौटे और पचीस को उन्हें प्रतापनारायण की मृत्यु का समाचार मिला था. उसी रात दोनों लखनऊ के लिए रवाना हुए. क्रिया-कर्म काल में दोनों भाइयों के साथ सुलोचना का मोर्चा खुला रहा था. जो कुछ हो रहा था वह किरायेदारों के लिए अनुकूल था. उनके अपने हिस्से पक्के थे. निकाले भी गये तो कुछ लेकर ही जायेंगे यह सभी ने तय कर लिया था. प्रतापनारायण के क्रिया-कर्म के लिए ठहरने के दौरान शिव ने लखनऊ के एक बिल्डर से एक करोड़ में मकान का सौदा कर लिया था. लेकिन सुलोचना को बताया नहीं था. दोनों दिल्ली पहुंचे ही थे कि सप्ताह बीतते न बीतते सुलोचना को सूचना मिली कि छोटे भाई ने आत्महत्या कर ली है.

"यह सब क्या हो रहा है शिव ?" सुलोचना ने शिवमान मोहन से पूछा था.

"उनका प्रारब्ध ! तुम कर क्या सकती हो !"

"हमें जाना चाहिए. आख़िर, वह मेरा छोटा भाई था."

देर तक चुप रहने और सुलोचना के चेहरे पर नज़रें गड़ाये रहने के बाद शिव बोला था, "फिर सोचना क्या ?" कुछ देर के बाद उपयुक्त अवसर पा वह बोला, "सुलोचना बताना भूल गया था. अन्यथा न लेना. एक बिल्डर से बात हुई थी. उसने मकान देखा था. कल उसका फोन आया था. ख़रीदना चाहता है. शायद शॉपिंग कॉम्प्लेक्स बनाना चाहता है. जल्दी ही रजिस्ट्री करवाना चाहता है. हम चल तो रहे ही हैं. तुम चाहो तो..."

"शिव, पिता जी ने मकान मेरे नाम इसलिए नहीं किया था कि हम उसे बेच दें. बेच तो वे भी सकते थे..." शिव चुप रहा था. ऐसे अवसरों पर वह चुप ही रहता था.

"गौरव चला गया. बेवक़ूफ़ था. आत्महत्या करने की क्या

आवश्यकता थी उसे. लेकिन रघु है अभी. मकान मैं उसे दे दूंगी. उसका विवाह करूंगी. वही तो बचा है..." फूटफूटकर रोने लगी थी सुलोचना.

मकान रघु को देने और उसका विवाह करने की सुलोचना की बात से हिल उठा था शिव. "भावुक मत हो सुलोचना. तुम्हें बताना उचित समझता हूं. बिल्डर ने बताया है कि रघु का कहीं अता-पता नहीं है. क्या पता उसने भी..."

चीख़ उठी थी सुलोचना और देर तक शिवमान मोहन के चेहरे की ओर टुकुर-टुकुर देखती रही थी. अचानक उसके सामने विनीता का चेहरा घूम गया था. लेकिन कुछ बोल नहीं पायी थी. अपने को बहुत बोल्ड समझने वाली वह प्रायः शिव के सामने हथियार डाल देती रही थी.

❐

बिल्डर को मकान बेचने के दो महीने बाद ही सुलोचना की भी मृत्यु हो गयी थी. रवि बाबू को शिव ने बताया था कि सुलोचना दो वर्षों से कैंसर से पीड़ित थी. धूमधाम से उसका क्रिया-कर्म किया था शिव ने. उसकी तेहरवीं के दिन गांधी भवन में दिनभर साहित्यिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया था. सुलोचना कविताएं लिखती थी, जिसकी जानकारी भी उसी दिन रवि बाबू को हुई थी. उसके दो कविता संग्रह दस दिनों के अंदर प्रकाशित करवाये गये थे. दोनों का विमोचन उस दिन हिंदी के दो वरिष्ठ कवियों ने किया था. कई बड़े आलोचकों, कवियों और प्रगतिशील लोगों ने सुलोचना को महान कवियत्री, और पति-पत्नी को ग़रीबों के लिए जीनेवाला संघर्षशील-क्रांतिकारी दंपति बताया था. उन पर बनाया गया एक वृत्तचित्र भी वहां दिखाया गया था, जिसमें साक्षात्कार में एक प्रश्न के उत्तर में शिव के बग़ल में बैठी सुलोचना कह रही थी, "मैं शिव को कबीर के रूप में देखना चाहती थी, लेकिन..."

एक कबूतर खुले दरवाज़े से घुस आया था और पर फड़फड़ाता बाहर निकलने के लिए पंखे के चारो ओर चक्कर काटने लगा था. रविबाबू की चेतना लौट आयी थी और वे अख़बार में समाचार पढ़ने लगे थे, "बीस नवंबर, नयी दिल्ली. 'भारतीय सर्वहारा संघर्ष समिति' के महासचिव शिवमान मोहन ने भारत के सर्वहारा वर्ग का आह्वान करते हुए कहा कि पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शक्तियों को कुचलने के लिए उन्हें एकजुट होने की आवश्यकता है. पूंजीवादी शक्तियां उदारीकरण के नाम पर..." और रविबाबू सोचने लगे कि यह तो वही है... वही शिवमान मोहन, सुलोचना का पति... जिससे वे वर्षों से परिचित हैं - लेकिन पहचान नहीं पाये... शायद इसलिए कि उनकी आंखों पर बड़े फ्रेम का मोटे लेंसवाला चश्मा चढ़ा हुआ था. 'कैसी कायापलट है यह' उन्होंने सोचा था.

ग़ज़लें

✍ मनोज अबोध

छांव क़द से बड़ी हो गयी,
एक उलझन खड़ी हो गयी.
फूल घर में बिखरने लगे,
बिटिया जब से बड़ी हो गयी.
अश्रुओं ने स्वयंवर रचा,
दर्द की घुड़चढ़ी हो गयी.
प्यार की छांव छलनी हुई,
धूप कितनी कड़ी हो गयी.
आपसे प्यार करने लगे,
बस, यही गड़बड़ी हो गयी.
हम समय नापते रह गये,
ज़िंदगी क्यों घड़ी हो गयी.
जब भी हम राह चलने लगे,
कोई बाधा खड़ी हो गयी.

उसने देखा न था कभी मुझको,
सौंप दी फिर भी ज़िंदगी मुझको.
बेसबब, बेख़याल, बेपरवाह,
प्यार की उसने सीख दी मुझको.
मुझपे मरना मेरे लिए जीना,
उसने दे दी है ज़िंदगी मुझको.
ग़म दिया है समंदरों जितना,
बख़्शा आकाश-भर ख़ुशी मुझको.
जिनको झूला झुलाया बांहों ने,
वो समझते हैं अजनबी मुझको.
उसकी बातें अबोध बच्चों-सी,
करती रहती हैं गुदगुदी मुझको.

सरस्वती मार्ग, बिजनौर (उ. प्र.) २४६७०१

रविबाबू का मन कसैला हो उठा. उन्होंने अख़बार उठाकर एक ओर फेंक दिया और सोचने लगे कि इस देश में आज ऐसे छद्मवेशी ही सब प्रकार से सफल हैं. उन्होंने दीर्घ निश्वास ली और आंखें बंद कर लीं. उन्हें एक दैत्याकार आकृति उभरती हुई प्रतीत हुई. वे उसे पहचानने का प्रयत्न करने लगे. वह शिवमान मोहन की थी... नहीं किसी अंडरवर्ल्ड डॉन की... किसी राजनेता की... बुश की...ब्लेयर की...और तभी उन्हें लगा कि उसमें वे सभी समाहित थे... आकृति फैलती जा रही थी. सुलोचना के पिता, भाई...गौरांगी...गुजरात...बिहार...मऊ...ईराक़ और...

बी-३/२३०, सादतपुर विस्तार, दिल्ली-११० ०९४.

कहानी

बेघर आंखें

भयभीत आंखें. सहमा हुआ चेहरा. शब्दों से बेख़बर. वह रसोई के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई है.

उसका कोई ना कोई नाम तो अवश्य ही होगा इस परेशानी के वातावरण में भी क्या सोचने बैठ गया है. पुरुषोत्तम नायर वही नाटक दोहरा रहा है जो कि वह पिछले वर्ष भर से करता रहा है. "मैं आपका घर ले के भागने वाला नहीं है जी. ...मिस्टर शुक्ला. हमको दो रात का मोहलत दे दीजिए बस. हम अपना अक्खा ज़िंदगी बंबई में बिताया जी...हमारे साथ कब्बी बी ऐसा नहीं हुआ जी कि अपुन के साथ कोई झोपड़पट्टी वाले की माफ़िक बात करे."

मैं फिर से विचलित हो जाता हूं. पचास वर्षीय नायर की तीसरी पत्नी, नयी नवेली दुल्हन की ओर देखता हूं.. ....नायर त्रिवेंद्रम से नया विवाह करके कल ही लौटा है. क्या मैं ठीक कर रहा हूं ? सूरी साहब को गुस्सा आ गया है, "शुक्ला जी, तुसी पागल ना बणो. बस तुसी हुण पास्से हो जाओ. ....ऐ मादर... पिछले तीन महीने से तूने यह क्या नाटक लगा रखा है. भाड़े की बात करो, तो आज देता, कल देता..."

"सूरी साब, मना कौन करता जी, मेरा डिपॉजिट है ना आपके पास."

"तेरी मां का बैदा मारूं. अब्बी कुल मिला कर छह महीने का भाड़ा हो गया साठ हजार रुपया और तेरा डिपॉजिट बस पचास हज़ार. ...और उसमें से भी पांच हज़ार तेरे दलाल ने रख लिया था. उसमें बचा पैंतालिस.... बाक़ी के पंद्रह हज़ार तेरा बाप देगा."

सूरी साहब की घुड़की सुनकर नायर शर्म से पानी पानी हो गया था. अपनी नयी दुल्हन को ना जाने क्या क्या सपने दिखा कर बंबई लाया होगा. मायावी बंबई नगरी...पहले ही दिन उसे क्या-क्या जलवे दिखा रही है. ....वह शायद थोड़ी ही देर पहले नहा कर ग़ुसलखाने से बाहर निकली है. उसके बाल गीले हैं. उसने एक प्यारा-सा छोटा-सा कुत्ता गोद में उठा रखा है. सूरी साहब की घुड़की सुन कर कुत्ते को महसूस हुआ जैसे उस पर दबाव थोड़ा बढ़ गया है...वह घबरा कर अपनी मालकिन की ओर देखने लगा है. मालकिन हिंदी न जानते हुए भी घटनाक्रम को समझने का प्रयास कर रही है.

महेश से अब सहन नहीं हो पा रहा है. सवा छह फुट लंबे महेश के गठे हुए बदन की मछलियां, उसकी काली टी-शर्ट से बाहर की ओर फिसलने लगी हैं. उसने सीधे नायर का गिरेबान ही पकड़ लिया है. ठेठ मराठी लहजे में शुरू हो गया है, "ठेंव हायका तुला, पाटील मणतायल मला."

"मिस्टर शुक्ला, ये क्या बिहेवियर है जी. ...मिस्टर ..मेरा गिरेबान छोड़ो जी." नायर पूरी तरह से गड़बड़ा चुका था.

"ऐ.. कायेबी आईकायच नाहीं मला...समंद सामान अन तुला फेकून देईन खाली."

मैं घबरा कर महेश को अलग करने का प्रयास करता हूं. महेश मुझ पर नाराज़ होने का नाटक करता है, "भाई साब, अब्बी बीच में नहीं बोलने का. मां कसम, इसने अगर अब्बी को अब्बी फ्लैट खाली नहीं किया तो इसका सारा सामान चौथे माले से नीचे फेंक दूंगा."

नायर ने ऐसी स्थिति की कल्पना भी नहीं की थी. ... उसके दिमाग़ में तो यही योजना उड़ान भर रही थी कि किस प्रकार फ्लैट को हड़प लिया जाये. फ्लैट का मालिक तो लंदन में रहता है. भला उसके पास कहां समय है कि बंबई में आकर लफ़ड़े में पड़े. उसे पूरी पूरी उम्मीद थी कि वह फ्लैट हथिया लेगा. किंतु यहां तो पूरा मामला ही पलट गया था.

तेजेंद्र शर्मा

"शुक्ला जी आप जेंटलमैन आदमी हैं जी. आई रेस्पेक्ट यू. अब यह गुंडा मवाली की माफ़िक बात करेगा तो ठीक नहीं है जी." नायर की सांस उखड़ने लगी थी, चेहरे पर बदहवासी छा रही थी और मैं स्वयं महसूस कर रहा था कि नायर की स्थिति कई स्तरों पर पतली हो रही थी.

मुझे अपने स्वर की शालीनता पर स्वयं ही आश्चर्य हो रहा था. "देखिए मिस्टर नायर, पिछले दो सालों से आप हमें तंग कर रहे हैं. अगर पहले से ही आप हमारी बात मान लेते, तो यह हालात हम सबको नहीं देखने पड़ते." मैं शायद नायर की कही बात से प्रभावित हो कर जेंटलमैन बनने का प्रयास कर रहा था.

"शुक्ला जी, हमको आपके घर में रहने का भी नहीं जी. सच बोलेगा तो, इस घर में कोई है जी, कोई रहता है... बहुत तंग करता है जी. हमने कितनी पूजा करवाई जी, मगर कोई फ़ायदा नहीं जी... रात को जब बेडरूम में सोता जी, ..तो.. जैसे

कोई मेरा गला दबाता जी. ...हमको ईदर रहने का कोई शौक़ नहीं जी. ... इस घर में भूत जी." नायर ने बेडरूम की ओर इशारा करते हुए कहा.

"अरे नायर जब तुम उस भूत के पति को इतना परेशान करोगे, तो वो भूत तुमको छोड़ेगा क्या ?" न जाने यह बात अचानक मेरे मुंह से कैसे निकल गयी. लेकिन उसके पश्चात एक पल भी मेरा व्यक्तित्व वहां मौजूद नहीं रह पाया. रसोई के दरवाज़े के निकट भीगी बिल्ली की गोद में डरा सहमा कुत्ता मुझे परेशान करने लगा.

चांदनी भी कई बार ग़ुसलख़ाने से नहा कर यूं ही ठीक उसी स्थान पर खड़ी हो कर मुझे आवाज़ लगाया करती थी. मैं चाहे कितना भी व्यस्त क्यों न होऊं, उस आवाज़ को एक बार सुन लेने के बाद काम छोड़ना विवशता हो जाता था. चांदनी - ....मेरे जीवन में वास्तविकता की ख़ुशबू भरने वाली चांदनी - बेवक़ूफ़ इन्सान के जीवन में अक़्ल का दीया जलाने वाली चांदनी. ...उस सिंह राशि वाली अप्रतिम सुंदरी को कर्क रोग ने जकड़ लिया था. ठीक उसी जगह मेरी गोद में चांदनी ने मौत की हिचकी ली थी, जहां रात को नायर का गला एक अज्ञात शक्ति घोंटने लगती है. वही अज्ञात शक्ति कभी मेरे जीवन की संपूर्ण शक्ति थी.

पांच वर्षों तक कैंसर से जूझती चांदनी अपने अंतिम दिनों में बस इसी कमरे में क़ैद हो कर रह गयी थी. अस्पताल से उसके लिए एक एडजस्टेबल बेड ले आया था. वह अस्पताल में नहीं मरना चाहती थी. घर में ही ऑक्सीजन, मॉरफ़ीन और अकेलापन - वह सारा समय दीवार पर लगी काले रंग की दीवार घड़ी को देखती रहती थी. उस घड़ी के डायल में मकड़ी का जाला बना था और सेकंड के कांटे पर मकड़ी बनी थी. उसी मकड़जाल में गुम रहती थी चांदनी. शायद उसे अहसास हो चला था कि वह घड़ी हमारा साथ छोड़ कर जाने वाली है.

एक दिन वही चांदनी तस्वीर बन कर दीवार घड़ी के स्थान पर विराजमान हो गयी. क्या वही नायर को वहां जीने नहीं दे रही थी!

"अरे कितनी पूजा करवाई. केरल से पुजारी पंडित बुलवाए. मगर वो तो जाने का नाम ही नहीं लेती. अक्खे घर में चलती फिरती दिखाई देती है."

"तो घर ख़ाली क्यों नहीं कर देते ? पूजा पाठ के चक्करों में क्यों पड़े हो ?"

पूजा पाठ से चिंतित सूरी साहब का फ़ोन लंदन भी आया था ... "ओ शुक्ला जी. ओ हरामी बड़ा परेशान कर रिहा है. टैम ते किराया नहीं देंदा जे, ते चक्कर ते चक्कर लगवा रिहा है. ...मादर...ने लिविंग रूम दे विच छः बाई छः का इक मंदिर बनवा लिया है जे. रोज़ पूजा ते पूजा करी जांदा है."

तेजेंद्र शर्मा

२१ अक्तूबर १९५२ (जगरांव, पंजाब);
एम. ए. (अंग्रेजी)

लेखन : *पिछले लगभग दो दशकों से कहानी लेखन. 'काला सागर', 'ढिबरी टाइट', 'देह की कीमत' एवं 'और यह क्या हो गया', चार कहानी संग्रह प्रकाशित. 'ढिबरी टाइट' नाम से पंजाबी में एक कहानी संग्रह प्रकाशित.*

पुरस्कार : *कहानी संग्रह 'ढिबरी टाइट' के लिए महाराष्ट्र राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार. अन्य पुरस्कारों में सहयोग फाउंडेशन पुरस्कार, सुपथगा सम्मान एवं एअर इंडिया की ओर से मौन हिंदी साधना पुरस्कार.*

विशेष : *दूरदर्शन के लिए 'शांति' धारावाहिक का लेखन. अनु कपूर निर्देशित फिल्म 'अभय' में नाना पाटेकर के साथ अभिनय. हिंदी साहित्य के एकमात्र अंतर्राष्ट्रीय सम्मान 'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' प्रदान करने वाली संस्था 'कथा यू. के.' के सचिव.*

संपर्क : *kahanikar@hotmail.com*

मैं परेशान, अपनी यादों के ताजमहल से दूर, लंदन में बैठा. वहां की सर्दी में भी पसीना आ गया. अगर उसने अट्ठारह बाई दस के कमरे में छः बाई छः का मंदिर खड़ा कर दिया, तो मेरा लिविंग रूम लग कैसा रहा होगा ?... लेकिन मंदिर तो मैंने रसोई में बनवा रखा था, एक छोटा सा लकड़ी का मंदिर जनार्दन से बनवाया था. उसमें शंकर भगवान से लेकर ईसामसीह तक को प्रतिष्ठितकर रखा था. फिर इस नायर को इतना बड़ा ढांचा लिविंग रूम में बनवाने की क्या आवश्यकता आन पड़ी थी ?

सुनेत्रा, मेरी वर्तमान पत्नी तो घर किराये पर देने के शुरू से ही विरुद्ध थी. वो बरस पड़ी, 'आप न बस अपने आपको ही अक़्लमंद समझते हैं. ...वो...वो चंद्रकांत आपका सगा हो गया... वह है तो दलाल ही न ! पूरे अस्सी हज़ार खा गया हमारे. ...एक अनजाने आदमी के हवाले किराया लेने की ज़िम्मेदारी डाल आये... हमें तो पूरा एक लाख का फटका लगा न. सोसायटी चार्ज दो हज़ार महीना जेब से गये और अस्सी हज़ार ऊपर से. जब मेरे लिए कोई चीज़ ख़रीदनी होती है, तो बजट याद आ जाता है.'

चंद्रकांत... वो अचानक अनजान व्यक्ति कैसे बन गया. जब चांदनी जीवित थी तो भाभी भाभी कहता थकता नहीं था. उसकी पत्नी मेघा तो मुझे राखी बांधने लगी थी. अपने लोग कितनी आसानी से धोखा दे कर बेगाने हो सकते हैं. ...यह फ़्लैट भी तो उसी ने ख़रीदवाया था.... कितना अपना सा बन गया था. सूरी साहब उस समय बिल्डिंग के सेक्रेटरी थे. चंद्रकांत ही उनसे मिलवाने ले गया था. कितनी बार तो भोजन भी हमारे साथ ही किया करता था. "अरे पूरियां तो भाभी जी बनाती हैं, बस. और उस पर कद्दू की सब्ज़ी. ...कमाल करती हैं भाभी." चंद्रकांत खाता भी जाता था, और चांदनी की तारीफ़ भी करता जाता. सूरी साहब हमेशा कहा करते थे, "शुक्ला जी, दलांलां नूं एन्नां ज़्यादा मुंह ना लाया करो. दलाल पहले दलाल ते फेर कुझ होर."

और मैं सूरी साहब को खिसका हुआ माना करता था. चंद्रकांत मेरे कहे अनुसार नायर से पैसे तो वसूलता रहा लेकिन उसे मेरे बैंक खाते में न डाल कर अपने खाते में जमा करवाता रहा. मैं जब कभी लंदन से फोन करके पूछता, तो जवाब मिलता "चिंता नको, भाई साहिब, भाड़ा मैं ले आया था."

झूठ भी तो नहीं बोलता था. किराया तो ले आता था, लेकिन खा जाता था. ...बंबई के प्रति मेरे सारे भ्रम उसने तोड़ दिये थे. मैं तो घर किराये पर देना ही नहीं चाहता था, बस चंद्रकांत ने ही फंसा दिया था. "भाई साहब आप भी कमाल करते हैं. सुना नहीं आपने कि ख़ाली घर भूत का वास. घर ख़ाली रखेंगे तो दीवारें तक ख़राब हो जायेंगी. ...किराये पर दे देते हैं. भाड़ा मैं हर महीने कलैक्ट करता रहूंगा, और आपके बैंक में जमा करवाता रहूंगा. कम से कम सोसायटी का ख़र्चा तो निकलता रहेगा.'

काश ! यह हो पाता. सुनेत्रा तो हमेशा कहती है, 'आपको बेवकूफ़ बनाना तो बहुत ही आसान है. बस कोई आपकी थोड़ी सी तारीफ़ कर दे कि आप कितने अच्छे हैं कितनी अच्छी कहानियां लिखते हैं, बस हो गये आप उस पर फ़िदा. ...वो पांच हज़ार मांगे तो बस पकड़ा देंगे.'

क्या बिना विश्वास के यह जीवन की गाड़ी पटरी पर चल सकती है ? जीवन में कहीं न कहीं, किसी न किसी पर तो विश्वास करना ही पड़ता है. किसी विश्वास के तहत ही तो हम अपने बच्चों को उनके स्कूल के अध्यापकों के हवाले कर देते हैं. यह भी तो एक विश्वास ही है कि पत्नी या पति एक दूसरे को ज़हर दे कर मारने का प्रयास नहीं करेंगे. हां जब विश्वास को ठेस पहुंचती है तो दर्द तो बहुत होता है न.

आज तो आलोक भी यही कह रहा है, "आप भी तो कमाल करते हैं. मुझे क्यों नहीं सौंपी यह ज़िम्मेदारी. मुझे कहा होता तो कम से कम यह दिन तो न देखना पड़ता." आलोक चंद्रकांत नहीं बन जायेगा, यह भी तो विश्वास की ही बात है न. इस मामले में विश्वास तो करना ही पड़ता है.

किंतु विश्वास निभाया तो बस सूरी साहब ने. छड़े छांट अकेले रहते हैं. मजाल है किसी का अहसान रख लें. रिटायर्ड जीवन बिता रहे हैं. घर में बस एक नौकरानी है. किसी के जीवन में दख़ल नहीं देते. अपने काम से काम रखते हैं. आंख कान खुले रखते हैं. सब कुछ जानते हुए भी, मस्त मौला बने रहते हैं. उनके साथ पहली मुलाक़ात की यादें बहुत कड़वी हैं. न जाने कब वे मित्र और अंततः घर के सदस्य ही बन गये. चांदनी की बीमारी में अस्पताल ले जाने से भी पीछे नहीं हटते थे. सही आन-बान वाले, ठेठ पंजाबी. दिल के राजा. उनकी कड़वी बातों में भी एक सच्चाई होती है. उनका भी यही कहना था कि जब बंबई छोड़ कर लंदन बसने जा रहे हो, तो घर बेच कर जाओ.

उस समय मुझे सूरी साहब पर संदेह हुआ था. क्योंकि फ़्लैटों की दलाली ही तो उनकी आय का मुख्य स्रोत है. शायद दलाली बनाने के चक्कर में हैं. उस समय चंद्रकांत बहुत अपना लग रहा था. उसका मीठा अपनापन सूरी साहब के कड़वे अपनेपन पर विजयी हो गया. और पुरुषोत्तम नायर आ बैठा मेरे घर. "जी, मेरी वाईफ़ है, दो बच्चे हैं. फिल्मों के लिए एक्सट्रा सप्लाई करने की एजेंसी है मेरी."

फ़िल्मी लोगों को फ़्लैट किराये पर देने के तो मैं शुरू से ही विरुद्ध था. लेकिन चंद्रकांत अपनी लच्छेदार भाषा से मुझे समझा गया. बंबई से विदाई के समय वह अपनी मारुति वैन भी लाया था, सुबह साढ़े चार एअरपोर्ट पहुंचना था. रात तीन बजे ही घर पहुंच गया था - चिंता तो करने का ही नहीं भाई साहब. मैं हूं न !

मुझे किसी काम के सिलसिले में सात महीने पश्चात लंदन से बंबई वापिस आना पड़ा. पहला झटका लगा जब बैंक गया. चंद्रकांत ने बैंक में एक भी रुपया जमा नहीं करवाया था. उससे संपर्क किया. फोन उसकी पत्नी ने उठाया, - 'अरे भाई साहब, कैसे हैं आप ! अरे भाई साहब क्या बतायें, धंधे में ऐसी प्रॉब्लम आ गयी थी कि आपके पैसे घर में ही ख़र्च हो गये. अपनी छोटी बहन समझ कर माफ़ कर दीजिए. ...बस एक डील फ़ाइनल होने वाली है, सबसे पहले आपके पैसे ही वापिस करेंगे.' मैं आज तक समझ नहीं पाया कि उस अनदेखे चेहरे की आवाज़ पर न चाहते हुए भी विश्वास कैसे कर पाया. ...वैसे यह भी तो सच है कि मेरे पास और चारा भी क्या था. ग्यारह महीने पूरे होने में अभी चार महीने बाक़ी थे. या तो चार महीने का किराया भुला कर किसी और पर विश्वास करता... फिर यह भी तो परेशानी कि जिस किसी को भी बताऊंगा, वही मज़ाक उड़ायेगा. चंद्रकांत को बुला कर पास बिठाया और उसे समझाने की बेकार सी क़ोशिश

करने लगा. ...जिन बातों पर स्वयं अपने आपको विश्वास नहीं था भला वो चंद्रकांत को कैसे समझा पाता.

लंदन में रहने के कारण मेरी सोच में थोड़ा अंतर तो आ ही गया था. चंद्रकांत से कहा कि भाई हमे अपना घर तो देख लेने दो. ...जरा पुरुषोत्तम नायर से एपाइटमेंट पक्की कर लो. - लो आप भी कैसी बातें करते हैं भाई साहब. घर आपका है... साला नायर जास्ती चूं-चपड़ करेगा, तो जूते लगा कर घर के बाहर करूंगा साले को.

फिर भी मैं नहीं माना. पुरुषोत्तम नायर को फ़ोन किया और चार बजे का एपाइंटमेंट ले कर ही घर की हालत देखने पहुंचा. घर के बाहर अभी भी चिरपरिचित सुरक्षा द्वार लगा था. दरवाज़े पर स्वागत नायर के कुत्ते ने किया था. चांदनी भी तो हमेशा अपने कुत्ते शेरा के बारे में बातें किया करती थी. जब बचपन कानपुर में बिता रही थी, उन दिनों घर का एक सदस्य शेरा भी था. एक मामले में वह कुत्ता था बहुत समझदार. पूरे परिवार में वह चांदनी और उसके पिता से ही सबसे अधिक जुड़ा था. चादनी के नेत्र सदा ही शेरा को याद करते हुए सजल हो उठते थे. शेरा, जिसे चांदनी गोद में बैठ लिया करती थी, कुछ ही दिनों मे इतना बड़ा हो गया था कि चांदनी को अपनी पीठ पर बिठा कर पूरे घर में घुमा सकता था. ...एलशेसियन कुत्ता था. पूरी तरह से स्वामी-भक्त.

किंतु यह कुत्ता तो विचित्र ही था. बस घर में अपने होने का अहसास भर करवा रहा था. पूरे शरीर पर इतने बाल कि चेहरे और पूंछ का अंतर ही समाप्त हो गया था. अनजान चेहरे और गंध की उपस्थिति को महसूस करके भौंकना ही उसका काम था.

दरवाज़ा एक युवती ने खोला था. भरे शरीर वाली केरल की सुंदरता. बड़ी-बड़ी आंखें, खिला रंग. ...अवश्य ही नायर की बेटी होगी. ... हेलो अंकल. ...आइए, आइए अंकल...अंदर आ जाइए. घर के अंदर घुसते ही एक अजीब सी गंध नथुनों में घुस गयी.

अंकल शब्द सुन कर थोड़ा झटका सा लगा. मैं अपने व्यक्तित्व को खासा संभाल कर रखता हूं. मित्र मंडली सदा ही कहती है कि मैं अपनी आयु से काफ़ी छोटा दिखाई देता हूं. किंतु 'अंकल'. ...नायर भी घर में ही था. ... यह लड़की पहले तो नायर के साथ कभी दिखाई नहीं दी. ...शायद उसकी बेटी होगा. - जानकी हमारा भाई का छोकरी. - नायर ने शायद मेरी नज़रों की भाषा समझ ली थी - अबी छुट्टी मनाने को ईदर आयी है.

इतने में एक काला कलूटा लड़का बेडरूम से बाहर आया. उसने एक बच्ची को गोद में उठा रखा था. ...एक और और...शायद उसकी पत्नी. ...एक बूढ़ी औरत...एक नौकर...एक ड्राइवर...यह नायर किस किस को हमारे घर ले आया है. ...जानकी की आंखों में एक अजीब खिलंदड़ापन मौजूद था. ...उसने लो कट का ब्लाउज और पेटीकोट पहन रखा था. वह चाय का कप रखने के लिए थोड़ी झुकी, तो स्पष्ट हुआ कि उसने ब्रेज़ियर नहीं पहनी थी. ...अपना कुछ सामान मेरी आंखों में छोड़ गयी. ...भरा पूरा सामान. ...चाय का कप पकड़ाते हुए भी उसने प्लेट के नीच से मेरे हाथ को छू लिया था. ...उस छूने में भी एक विचित्र सी शरारत मेरे पूरे जिस्म में गुदगुदी कर गयी...

- शुक्ला जी, यह फ़्लैट को जरा पेंट करवाना पड़ेगा जी. ...बहुत गंदा दिखता जी. - नायर मुझे स्वप्नलोक से धरती पर ले आया था.

"पुरुषोत्तम जी, दस महीने पहले ही तो पेंट करवाया था. ... अब अगर घर मे कुत्ता हो, इतने सारे लोग रहें और देखभाल न हो, तो पेंटिंग का ख़र्चा तो आपको ही करना पड़ेगा." - मुझे स्वयं अपनी भाषा पर विश्वास नहीं हो पा रहा था. मुझ जैसा आम आदमी का समर्थक अचानक पूंजीवादी भाषा बोलने लगा था.

"शुक्ला जी, रात का खाना ईदर ही खाने का. ...साउथ इंडियन खाना खाते हैं ना ?"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं, ज़रूर खायेंगे पुरुषोत्तम भाई. मगर आज नहीं. ... आज तो कुछ कागज़ात निकालने हैं. अगर आप की इजाज़त हो तो अपने कमरे का ताला खोल कर..."

"अरे कैसी बात करते हैं शुक्ला जी. जभी मर्जी आवे, जो चाहिए ले कर जाइए न." ...चंद्रकांत ने मेरी ओर विजयी मुस्कान फेंकी - देखा, मैं न कहता था ! उसकी आंखे मुझ तक यही संदेश प्रेषित कर रही थीं.

फ्लैट भाड़े पर देते समय चंद्रकांत से मैंने शर्त रखी थी कि एक बेडरूम में हमारा सामान रहेगा, और उसमें ताला लगा रहेगा. एक बेडरूम और लिविंग रूम ही भाड़े पर देंगे. हुआ भी यही. ...अपने कमरे तक जाते जाते मैं पैसेज में रुक कर बाथरूम का मुआयना करने लगा. ...सीलन और पीलेपन की उबकाई वाली महक आ रही थी. ...टायलट फ़्लश जैसे सदियों से साफ़ नहीं की गयी थी. वाश बेसिन भी गंदा. ...बाथरूम की टाइलों पर भी गंद जमा था. जानकी मेरे पीछे चली आयी थी. ...पीछे से छू कर बोली, - "अंकल कबी बी आने का होये, तो आ जाया करो. ...उदर, लंदन में बहुत ठंडी होती क्या ?"

सिहरन सी दौड़ गयी बदन में. ...न मालूम होठें में क्या बुदबुदा कर रह गया. ...फिर से बाथरूम की ओर देखा. ...जब चांदनी जीवित थी तो उस बाथरूम से चंदन की खुशबू महका करती थी. चांदनी केवल चंदन वाला साबुन ही प्रयोग किया करती थी. जब गीले बाल लिये चंदन की महक बिखेरती, बाथरूम से बाहर निकलती, तो लगता जैसे जन्नत धार्मिक किताबों से बाहर

निकल कर आंखों के सामने जीवित हो उठी हो.

अपना बेडरूम खोला तो सात महीने की सीलन और घुटन ने मेरा स्वागत किया. मैंने तुरंत ही सभी खिड़कियां खोल दीं, परदे हटा दिये. ...सूरज की रौशनी ने कमरे में प्रवेश किया तो जैसे कमरे में रखी वस्तुओं को नये जीवन का आभास हुआ. ...मुड़ कर देखा तो जानकी अब भी शरारती आंखों से देख कर मुस्कुरा रही थी. आगे बढ़ कर, मुझ से लगभग सट कर खड़ी हो गयी - अंकल अंदर सबी ठीक है न. ...! यह कैसी परीक्षा ले रही है जानकी और क्यों. कहीं यह कोई नायर की चाल तो नहीं!

मैंने राशन कार्ड और अन्य कागज़ात निकाले, पुरुषोत्तम नायर को नमस्कार किया. जानकी की आंखों को बता दिया कि वह मुझे अच्छी लगी थी. ...किचन और बाथरूम की चिक्कट गंदगी को भुलाता हुआ पड़ोस के रोशन अग्रवाल के दरवाज़े पर दस्तक दी. ...वह आजकल सोसायटी का चैयरमैन है, - "यार शुक्ला जी, आप भी कमाल के आदमी हैं. कैसे लोगों को फ़्लैट भाड़े पर दे दिया. सोसायटी तो आपके ख़िलाफ़ रेज़ोलूशन पास करने वाली थी. ...वो तो मैंने किसी तरह रोक लिया. ...आपके साथ पुरानी दोस्ती है."

साला पाखंडी. मुझे बेवकूफ़ बनाने पर तुला था. परंतु मैं तो ग़लत साबित हो ही चुका था. चंद्रकांत और नायर मुझे गधा साबित कर ही चुके थे. सुनेत्रा से जब सामना होगा, तो बातों के ऐसे तीर मारेगी जो असह्य हो जायेंगे. प्रकट में मुस्कुराने के सिवा मेरे पास कोई चारा भी तो नहीं था. "क्यों रोशन भाई, हो क्या गया ?"

"अरे धंधे वालों को फ़्लैट भाड़े पर दे दिया आपने !"

"तो क्या बेकार लोगों को दे देता ? यार भाड़ा देने वाले कोई न कोई धंधा तो करेंगे न ?" उस कठिन परिस्थिति में भी मैं चुहल करने से नहीं चूका.

"आप भी कमाल करते हैं साहब. यह जो नायर के घर रहती है न जानकी, साली धंधा करती है. ...एक दिन तो मुझ से ही रात का सौदा करने बैठ गयी थी... जानती नहीं साली कि हम शादी शुदा शरीफ़ लोग हैं." - आख़री बात उसने अपनी पत्नी को देखते हुए कही थी. अग्रवाल की पत्नी भी मुझे अंकल कहती है. - "अब देखिए न अंकल शरीफ़ों का तो बिल्डिंग में रहना ही मुश्किल हो गया है." - और मैं अवाक् उस औरत को देखे जा रहा था जो कि अग्रवाल के साथ घर से भाग आयी थी. और आज शराफ़त का ढिंढोरा पीट रही थी. ...मैं शायद उसकी बात समझने का प्रयास भी करता, किंतु अंकल सुनने के पश्चात तो ग़ुस्से पर क़ाबू रख पाना भी मुश्किल हो रहा था.

चौथे माले से नीचे उतरते समय चंद्रकांत अपनी ढफली बजा रहा था - "भाई साहब, अगर आप पुरुषोत्तम नायर से नाराज़

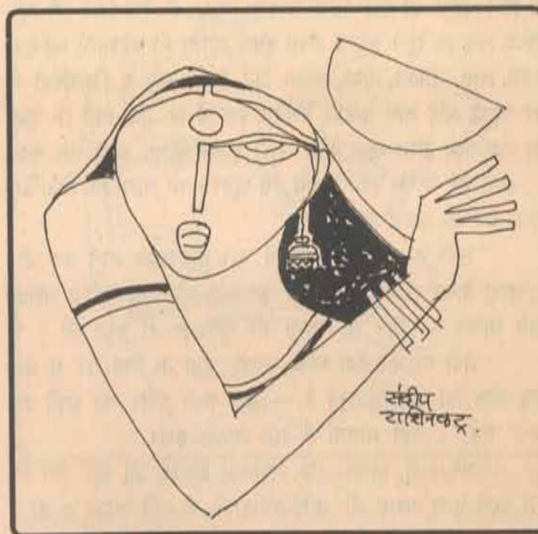

हैं, तो साले को निकाल बाहर करते हैं और दूसरा किरायेदार रख लेते हैं. आप तो जानते हैं कि अपना काम तो एकदम पक्का रहता है." हरामी ! किराया तो साला ख़ुद खा गया, अब डिपॉज़िट के पचास हज़ार कहां से वापिस करूंगा. लंदन वापिस चलने से पहले... धड़कते दिल से सूरी साहब से बात कर ही ली, "ओ यार शुक्ला जी, तुसी वी तां कमाल करदे हो. मैंनू दसना सी. मैं मायहवे दे गल विचों हथ पा के पैसे कढवा लैंदा."

बस तय पाया कि सूरी साहब हर महीने पुरुषोत्तम नायर से पैसे लेकर मेरे बैंक खाते में जमा करवाते रहेंगे. सूरी साहब की कड़वी मगर सच्ची बात कान में पड़ी. - देखो शुक्ला जी, अज दे ज़माने विच कोई वी कम मुफ़्त विच नहीं होंदा है. ...साढ़ा हिसाब एह रहेगा कि मैं तुहाडे घर दा पूरा ख़्याल रखांगा, किराया कलेक्ट करके बैंक विच जमा करावांगा ते ओस दे बदले पंज सौ रुपया महीने मैं चार्ज़ करांगा.

सूरी साहब की स्पष्टवादिता बहुत पसंद आयी. उनसे हाथ मिलाया और वापिस लंदन चला आया. अबकी बार न तो चंद्रकांत की पत्नी ने मेरे नाम कोई संदेश भेजा और न ही चंद्रकांत रात को अपनी मारुति वैन में मुझे एअरपोर्ट तक विदा करने आया. आलोक आज भी आशा लगाये बैठा था कि मैं घर का उत्तरदायित्व उस पर छोड़ कर आऊंगा. किंतु वह इस काम का ज़िम्मा स्वयं आगे बढ़ कर नहीं उठाना चाहता था.

मैं तो भाड़े का ज़िम्मा सूरी साहब के सिर लगा कर लंदन वापिस चला आया. किंतु अब परेशानी शुरू हुई पुरुषोत्तम नायर के लिए. सूरी साहब बिना किसी झिझक हर पहली किराया वसूलने पहुंच जाते नायर के पास. वह उनसे बचता फिरता, बहाने खोजता, किंतु सूरी साहब ने तो जिस बात की ठान ली सो ठान ली. ...पहले

दो तीन महीने तो एक आध सप्ताह विलंब से पैसे आते भी रहे, उसके बाद तो सूरी साहब जैसा दबंग व्यक्ति भी परेशानी महसूस करने लगा. उनका माथा ठनका जब वे किराये के सिलसिले में घर पहुंचे और वहां उन्होंने लिविंग रूम में छः फुट बाई छः फुट का एक नया ढांचा खड़ा देखा. सूरी साहब हक्के बक्के रह गये. ... सोच रहे थे कि क्या जवाब देंगे शुक्ला को भला एक विवादित ढांचा घर के अंदर क्यों.

"सूरी साहब, ईदर घर में भूत प्रेत बहुत होने का जी. ...खास केरल से पंडित जी को बुलवाया जी. एक महीना तलक पूजा चलेगा. ...ईदर तो रहना भी मुश्किल हो गया जी."

"तेरी मां का बैदा मारूं, नायर पूजा के लिए घर में यह तोड़ फोड़ का क्या मतलब है. ...इस साले मंदिर को अभी का अभी तोड़. ...नहीं मांगता है यह लफड़ा इधर."

"अरे सूरी साहब, घर आपका, शुक्ला जी का. हम तो बस इधर पूजा करता जी. कोई रंडीबाज़ी तो नहीं करता न जी." सूरी साहब परेशान. उल्लू का पठ्ठा नायर, पूजा पंडितों पर ख़र्चा तो कर सकता है. मगर भाड़ा देते समय साले की मां मर जाती है. पूजा के उठते धुंए से कमरे की छत काली पड़ गयी है. जाले लटकने लगे हैं. किचन के प्लेटफ़ॉर्म पर मैल जमने लगा है. सफ़ेद मारबल पीला और काला पड़ने लगा है. अल्मारी का सनमाईका जगह जगह से उखड़ने लगा है, बाथरूम का पॉट ग़लाज़त की अलग कहानी सुना रहा है. सूरी साहब प्रतीक्षा में हैं कि शुक्ला का फ़ोन कब आता है. अब तो फ़्लैट ख़ाली करवाना ही पड़ेगा.

लंदन से यदि किसी को भी फ़ोन करने से पहले मेरा दिल धक धक करने लगता था तो वे थे सूरी साहब. डर लगता था कि न जाने फ़्लैट के बारे में क्या अशुभ समाचार सुनने को मिलेगा. लिविंग रूम मे मंदिर के बारे में सुनने के बाद तो सुनेत्रा के लिए और अधिक बरदाश्त कर पाना संभव नहीं था. उसने मुझे ऐसी हिक़ारत भरी निगाह से देखा कि मेरे लिए बंबई का टिकट कटवाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं बचा था.

सूरी साहब ने अंततः नायर को फ़्लैट ख़ाली करने का नोटिस दे डाला. - "काये का खाली करने का जी. तुम अपना कीम्मत बोलो जी. मैं यह फ़्लैट ख़रीद लेगा. अबी तो मैं केरला जाता. उदर शादी है." - सूरी साहब चुप. यह भी नहीं पूछ पाये कि आख़िर शादी है किसकी - बेटे की या फिर बेटी की.

मेरी फ्लाइट रात के साढ़े बारह बजे छत्रपति शिवाजी एअरपोर्ट पर पहुंची. प्रकाश और उसकी पत्नी दोनों मुझे लिवाने हवाई अड्डे पर पहुंचे थे. प्रकाश और हनी जैसे मित्र अपने जीवन की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियों में से एक मानता हूं. प्रकाश जैसा प्रतिबद्ध मित्र अंग्रेजी में कहा जाये तो एक - एनडेंजर्ड स्पीशी है. ऐसे लोग दुनियां में बहुत कम ही बचे होंगे. प्रकाश ने देखते ही हांक लगाई, - ओये कालियां मुच्छां ते चिट्टे बाल, देखो लंदन दे कुक्कड़ खान वाले पंडत दा हाल.

प्रकाश मुझे अपने घर ले गया. उसके घर रहने का एक निजी लाभ भी था कि सुबह छः बजे उठकर भी नायर पर धावा बोला जा सकता था. हनी ने सुबह सुबह उठकर चाय बना दी थी. प्रकाश तो रात वाले कुर्ते पजामे मे ही साथ हो लिया था. पहले हम सूरी साहब के घर पहुंचे. कोई औपचारिकता नहीं. बस साथ हो लिये. मैं अपने धड़कते दिल को नियंत्रण में रखने का प्रयास कर रहा था. चौथे माले के अपने आठवें फ़्लैट पर दस्तक दी. दरवाज़ा जानकी ने ही खोला. आज वह मुझे देख कर मादक अदा से मुस्कुराई नहीं. फिर भी चेहरे पर असफल सी हंसी लाते हुए बोली, "अंकल, नायर तो इद्दर नहीं है. शादी बनाने को केरला में गया है. दो दिन के बाद में आने वाला है."

यानि कि जानकी को भी ख़बर है कि मैं लंदन से ख़ास तौर पर घर ख़ाली करवाने के लिए आया हूं. अब शुरू हुआ नाटक का पहला भाग. हम लोग घर के अंदर घुसे और अंदर घुसते ही सूरी साहब ने शुरुआत की, "देखो शुक्ला जी, मांयवे ने पयो वाला मंदिर खड़ा करता है. ...मैं कहना, पहले तां कारपेंटर बुलवाओ, ते एह मंदिर तुड़वाओ." सूरी साहब अपनी नौकरानी भामा को साथ लाये थे, "शुक्ला जी, नाल जनानी होणी ज़रूरी होंदी है. ओथे जे असी सारे जेंट्स ही होवांगे, ते किसे वी तरह दा ब्लेम लग सकदा है." वहीं से हनी को भी फ़ोन कर दिया था. वह भी साथ हो ली थी. कारपेंटर आया. पंद्रह बीस मिनट में ही मंदिर का अस्तित्व समाप्त हो चुका था. मन में कहीं अपराध बोध भी था कि मंदिर टूट गया. कैसे कभी मस्जिद टूटती है तो कभी मंदिर. होते दोनों ही विवादित हैं. किंतु सचमुच आश्चर्यचकित करने वाली बात यह थी कि जानकी या फिर नायर के ड्राइवर ने इस मुहिम में कोई भी समस्या खड़ी नहीं की.

"जानकी, नायर तुम्हारा क्या लगता है ?" मैं पूछे बिन रह नहीं पाया.

"मेरे बाप का दूर का भाई लगता है." जानकी का दो टूक जवाब हाज़िर था. "अंकल, इस आदमी का अक्कल ही मारा गया है. इतना पैसा पुजारी लोगों पर ख़र्चा किया. रात-रात भर पूजा चलता था. दारु, मटण ! न मालूम क्या करता है. अबी अपनी सादी बनाने गया है."

"क्या ! भैनचो अपणी शादी करने गया है ?" अब सूरी साहब के हैरान होने की बारी थी.

"अंकल !" जानकी की आंखों में पहली बार एक विचित्र-सी सच्चाई दिखाई दी. "बस दो दिन की ही तो बात है. हमको अबी घर से नहीं निकालो. नायर जैसे ही वापिस आता, हम तबी का तबी चला जायेंगा. वैसे मैं तो कल ही चली जाने वाली है."

मैंने सूरी साहब की तरफ़ देखा. इससे पहले कि वे कुछ कह पाते, प्रकाश बोल उठा, "ठीक है लड़की, तुम जैसे भी हो, नायर को फ़ोन कर दो कि अगर दो दिन में केरल से वापिस नहीं आया, तो हम सारा सामान उठा कर घर से बाहर फेंक देंगे."

जानकी से अधिक हैरान तो मैं था कि किस प्रकार प्रकाश ने स्थिति की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी. मैंने एक बार फिर अपने बेडरूम का ताला खोला, वहां दीवार पर लगी चांदनी की फ़ोटो को साफ़ किया, खिड़कियां खोलीं, कमरे को प्रकाश के कुछ घूंट पिलाये और यह भी पक्का कर लिया कि सामान से किसी प्रकार की छेड़छाड़ तो नहीं की गयी. सूरी साहब भी प्रकाश के तेज के सामने चुप्पी लगा गये.

सामने वाले घर से इमरान की शिकायत सबसे पहले सुनने को मिली, "यह क्या शुक्ला अंकल, कैसे आदमी को घर भाड़े पर दे दिया, मालूम नहीं कैसी कैसी गंदी पूजा करता है. ...हरामी, चूहों का ख़ून निकाल कर चढ़ाता है." मैं शायद इमरान की कही बात को हिंदू पूजा के विरुद्ध आक्रोश मात्र मान लेता, किंतु घर में भागते चूहे अपनी आंखों से देख कर आ रहा था. "अपुन तो आपकी रेस्पेक्ट करता है, नहीं तो हरामी को टपका डालेगा एक दिन, बोल देना उसको."

मन में एक नीच विचार कुलबुलाया. अगर इमरान नायर को टपका दे तो अपना तो काम बन जायेगा. फिर इमरान के तो अंडरवर्ल्ड के साथ संबंध भी हैं. क्या इमरान सचमुच ऐसा कर सकता है ? यह मध्यमवर्गीय विचार जितनी तेज़ी से दिमाग़ में आया उससे भी अधिक द्रुतगति से बाहर भी निकल गया.

चौथे माले से नीचे उतरा तो धोबी, एस.टी.डी. वाला, केबल वाला, दूध वाला सभी को मुझसे एक ही शिकायत थी कि मैं कैसे आदमी को फ़्लैट किराये पर दे गया. सभी के पैसे नायर पर बकाया थे. "ऐ सेठ, उसको निकालने से पहले हमारे पैसे डिपॉज़िट में से ज़रूर काट लेना." डिपॉज़िट ! माई फुट !

अब हमारी टोली चली सूरी साहब के घर. उनकी नौकरानी भामा चाय बना लायी. हमारा अगला क़दम क्या होना चाहिए? अगर नायर वापिस ही नहीं लौटा, तब क्या होगा ? आख़िर मैं छुट्टी और कितने दिन के लिए बढ़वा पाऊंगा. बहुत कठिनाई से तो दस दिन की छुट्टी मंजूर करा पाया था. मां से मिलने जगरांव भी जाना था. क्या वहां का कार्यक्रम स्थगित कर दूं ? सुनेत्रा तो बहुत नाराज़ होगी यदि मां से बिना मिले वापिस चला गया. और फिर इतनी दूर से भारत आ कर मां से न मिलूं, यह तो बदतमीज़ी ही होगी. सूरी साहब ने मशविरा दिया, "देखो शुक्ला जी, पहले तां चलिए तुहाडे दलाल नूं मिलिए. ओसदा कम है घर ख़ाली करा के देणा, जे तुसी पुलिस दा मामला संभाल सकते हो, ते मैं चार बंदे बुला के सौरे दा समान थल्ले सुट देन्ना."

नहा धो कर तैयार हुए, चंद्रकांत के ऑफ़िस पहुंचे. वहां जा कर अपने भाग्य पर रोना आ गया. चंद्रकांत तो अपना काम-धंधा बंद करके, मीरा रोड चला गया था. किसी को अपना नया पता तक नहीं दे कर गया. यह विचार तो सपने में भी नहीं आ सकता था कि चंद्रकांत ऑफ़िस को ताला लगा कर सरक लेगा. "आपके कितने अंटी कर गया है ?" सामने से प्रश्न सुन कर एक और झटका लगा. "यहां तो जो भी उसे पूछने आ रहा है, किसी के दस ले गया है तो किसी के पंद्रह. एक के तो चालीस गोल कर गया है." ...सामने वाले को क्या बताता कि मुझे अस्सी हज़ार की चपत लगा गया है.

मीनाक्षी की याद आ गयी. उसकी पुलिस में अच्छी पहचान है. मीनाक्षी के साथ डी. एन. नगर पुलिस स्टेशन पहुंचे. मन में एक विचार यह भी आ रहा था कि नायर को वापिस तो आ लेने दूं. यह भी तो हो सकता है कि वह वापिस आकर स्वयं ही फ़्लैट खाली कर दे. उहापोह में मीनाक्षी से ढंग से बात भी नहीं कर पाया था. वह मेरी स्थिति को भली भांति समझ रही थी. वह तो सदा ही मेरी स्थिति समझती रही है. बिना किसी अपेक्षा के, सदा से ही मेरे सभी काम अपने जान कर करती रही है.

कई बार सोचता हूं कि प्रकाश, हनी, मीनाक्षी, अरुण, कमल, विजय, करम कितने नाम हैं जिन्होंने बिना किसी स्वार्थ के मेरे कई कई काम किये हैं. क्या मैं भी कभी उनकी अपेक्षाओं पर खरा उतरा होऊंगा ? मेरी ही तरह वे भी तो ऐसे मित्र की चाह रखते होंगे जो बिना स्वार्थ के उनके काम आये. क्या मैं केवल एक आत्मकेंद्रित व्यक्ति हूं ?

इंस्पेक्टर शेंडे ने मीनाक्षी और मुझे बिना प्रतीक्षा करवाये अपने कमरे के भीतर बुलवा लिया है. ..."देखिए मि. शुक्ला, यह मामला है सिविल का. नायर ने आपके घर का ताला तोड़ कर उस पर कब्ज़ा तो नहीं किया है न. दूसरे आपके पास ऐसा

कोई डाक्यूमेन्ट भी तो नहीं है जिससे पता चले कि आपने अपना फ्लैट उसे लीव एंड लाइसेंस पर दिया है. पिछले साल से इस बारे में भी नये क़ानून बन गये हैं. आपको पुलिस स्टेशन को भी सूचित करना होता है, लाइसेंसी की फ़ोटो जमा करवानी होती है और फ़ीस भी भरनी होती है. ...इस मामले में पुलिस आपकी कोई सहायता नहीं कर सकती."

मैं बेवक़ूफ़ की तरह कभी मीनाक्षी तो कभी इंस्पेक्टर शेंडे को देखे जा रहा था. मराठी में इंस्पेक्टर शेंडे से कहा, "तुम्हाला काहीतरी करायलाच लागेल, साहेब."

इंस्पेक्टर शेंडे ने सपाट स्वर में कह दिया, "हां, हम ऑफ़ दि रिकॉर्ड, एक मदद कर सकते हैं. ...आप जा कर उसका सामान घर से बाहर फेंक दीजिए. वो हमारे पास रिपोर्ट करवाने आयेगा तो हम रिपोर्ट लिखेंगे नहीं, उल्टा उसे कुछ घंटे थाने में बिठाये रखेंगे ताकि आपको अपना ऑपरेशन पूरा करने का मौक़ा मिल जाये. इससे ज़्यादा की आप हमसे उम्मीद न करें."

मैं वापिस सूरी साहब के घर. फिर विचार विमर्श, "देखो शुक्ला जी, तुसी दो दिन वेट करो. नायर दी एबसेंस विच उसदा समान सुटांगे, ते पंगा हो जायेगा. तुहाडे कोल इक कमरा तां हैगा ही है. असी दस बंदे जा के उत्थे बैठ जावांगे, ते ओसदी यही तही कह दिआंगे. चलो तुहानू पाटिल कोल लै चलना. शिव सेना दा बंदा है, कम हो जायेगा."

मुंडे सिर वाला पाटिल मिल गया. देखने से ही विश्वास हो चला था कि यदि यह आदमी चाहे, तो हमारा काम हो सकता है. कहने को तो विश्वास पाटिल फ़्लैटों की दलाली करता है, मगर अंदर खाते क्या चलता है... राम जाने. "आपुन कौण सी बिल्डिंग में रहने का ?"

"गंगा भवन, पाटिल. अपनी ही बिल्डिंग में." जवाब सूरी साहब ने दिया.

"कौन सा फ्लैट ?"

"चार सौ तीन. ...दूसरे विंग में है."

"ओ, वो वाला ! तुम्हारे फ्लैट की तो अखी मार्केट में बहुत बदनामी हो रखी है, सेठ. उसमें तो धंधा चलता है." पाटील ने आंख दबा कर कहा.

"धंधा ! यानी ?" मैं आश्चर्यचकित पाटिल की ओर ताके जा रहा था.

"धंधा नहीं समझता क्या सेठ ? धंधा...यानि कि धंधा."

पड़ोस के रोशन के शब्द एक बार फिर कानों में टेलिफ़ोन की ग़लत कॉल की तरह बजने लगे थे. ...जानकी ...धंधा...नायर...फ़िल्मों के लिए मॉडल और एक्सट्रा सप्लायर ! ... धंधा !

चांदनी के मंदिर जैसे घर का नाम धंधे से कैसे जुड़ गया ? चांदनी के अंतिम क्षणों की कुछ खोजती आंखें मुझसे जवाब मांग रही थीं. ...उसके घर की पवित्रता को बदनाम करने का उत्तरदायी तो मैं ही था. ...चंदन के साबुन से नहाई...गीले बालों वाली चांदनी की आंखों में अब भी वही प्रश्न टंगा है. ...ऐसा कैसे हो गया है ?

सूरी साहब स्थिति की नज़ाकत को भांप चुके थे, "ओह शुक्ला जी, घबरान दी कोई गल नहीं. लोकां दा की है ? लोकी तां भौंकदे रहंदे ने. तुसी सुणया नही...." .

मैं क्या सुनता ? ...मेरा घर, जिसमें निमंत्रित हो कर मित्र लोग गौरवान्वित महसूस करते थे, आज वही घर धंधे के लिए बदनाम हो चुका है...! ...जानकी की वो मुस्कुराहट आज बहुत ज़हरीली महसूस होने लगी थी.

बस तय हो गया. नायर के वापिस आते ही, पहले तो उससे नम्रता से पेश आते हैं, अगर वो नहीं मानता, तो बस पाटिल के आदमी आकर उसका सामान उठा कर बाहर कर देंगे. हां, इंस्पेक्टर शेंडे को अवश्य सूचित करना पड़ेगा. किंतु नायर के लौटने में तो अभी दो दिन बाक़ी थे. ...सूरी साहब की बात दिल को जम गयी कि यदि बंबई में रहा तो परेशान ही रहूंगा, पंजाब जा कर मां से मिल आऊं. संभवतः मां का आशीर्वाद ही कोई चमत्कार दिखा दे.

मां को भी ख़ुश कहां कर पाया. उसे शिकायत थी कि यह आना भी कोई आना हुआ. न मां के पास बैठे, न ढंग से बातचीत की. बहन अलग नाराज़. मां और बहन को नाराज़ कर दो ही दिन में बंबई वापिस भी लौट आया. सामने फिर जानकी थी. नायर को एक दिन बाद का टिकट मिला था. नायर रात को पहुंचेगा. एक-एक पल बिताना कठिन था. रात भर बिस्तर पर करवटें बदलता रहा. प्रकाश मेरी परेशानी को सही ढंग से समझ रहा था. शायद इसीलिए अपनी पत्नी के साथ अपने बेडरूम में न सो कर, मेरी बग़ल में फ़र्श पर ही बिस्तर लगा कर लेट गया. हम दोनों बातें करते रहे. कई बार ऐसा भी हुआ कि प्रकाश की बात का उत्तर कमरे के अंधेरे में कहीं खो गया. मैं लेटा लेटा चांदनी के अंतिम दिनों के बारे में सोचता रह गया. प्रकाश ने मुझे बंबई से विदा करते समय कहा था, "पंडित जी, यह चौथे माले का आठवां फ्लैट न जाने कब और कैसे मेरा अपना बनता चला गया, यह तो याद नहीं पड़ता." उसकी बात की गूंज मुझे लंदन में भी सुनाई देती रही. ....आज उसी चौथे माले के आठवें फ़्लैट पर बदनामी की मोहर लगा कर भी नायर वहीं जमा हुआ है.

सुबह को होना ही था और वो हो भी गयी. ...हनी ने आज दफ़्तर से अवकाश ले रखा है. ...उनींदी आंखों से बेड टी बना कर दे गयी है. ...अपने ख़ूबसूरत व्यक्तित्व का एक और

पहलू दर्शा गयी है, "भाई साहब, पहली बार तो हम सब इकट्ठे चलेंगे. फिर स्थिति का जायज़ा लेने के बाद... जैसा आप ठीक समझें."

सुबह सात बजे अपने ही घर की घंटी बेगानों की तरह बजायी. ...चार पांच घंटियों के बाद नायर की आवाज़ सुनायी दी. ...मन को तसल्ली मिली कि चलो लौट तो आया है. यदि केरल में बैठ रहता तो हमारे लिए कार्यवाही कर पाना कितना कठिन हो जाता."

दरवाज़ा खुला. "शुक्ला जी ! आइए, आइए."

सूरी साहब ने मुझे बोलने का अवसर ही नहीं दिया, "अब बोल भैनचो... मुझे बोला दो दिन में फ़्लैट खाली करता हूं, और बिना बताये केरल चला गया."

"ये कैसी लैंग्वेज यूज़ करता मिस्टर सूरी ! ...आप तो कितना बार हमारा घर में आया. हम तो आपके साथ कितना डीसेन्ट बात करता जी."

"शुक्ला जी, तुसी हुण ऐस कोलों पुछो कि मांयावा मैनूं झांसा दे के, ग़ायब किवें हो गया." सूरी साहब ने नथुने फूल रहे थे.

मैं शर्मिंदगी से गड़ा जा रहा था. सूरी साहब की ओर देखा, "भरा जी, इक मिनट, मैं गल कर लवां ? ...मिस्टर नायर, हमारी आपसे कुछ शिकायतें हैं."

"बोलिए न शुक्ला जी. आप एकदम जेंटलमन आदमी है. मैं आपका बहुत रेस्पेक्ट करता जी."

"मिस्टर नायर, जब आपने हमारा घर किराये पर लिया था, उस समय आपने बताया था कि फ़्लैट में आप, आपकी पत्नी और एक बेटी रहेगी. ...यहां तो आप पूरी बारात के साथ-साथ एक कुत्ता भी रखे हुए हैं." इतने में कुत्ते ने कुनमुनाने और भौंकने के बीच की सी एक आवाज़ निकाली. शायद उसे कुत्ता कहा जाना अच्छा नहीं लगा था.

"वो तो शुक्ला जी अबी फ़ैमिली होयेंगी, तो गेश्ट लोग तो आयेंगे न जी."

"फिर आपने भाड़ा भी कभी टाइम पर नहीं दिया."

"अरे साब, जबी चंद्रकांत आता था, तो भाड़ा टाइम पर ही ले की जाता था न जी."

मैं नायर की चाल को अच्छी तरह समझ रहा था. वो जानता था कि चंद्रकांत से मेरे संबंध बिगड़ चुके हैं. "भूतनी के, चंद्रकांत की क्या बात करता है. मेरे साथ बात कर. मुझे नीचे देखता है तो मुंह फेर लेता है. घर में छुप कर बैठ रहता है. लेकिन मुझसे मिलने को साफ़ मना कर देता है. ...चूतिया समझ रखा है क्या हम सबको ?" सूरी साहब का बस चलता तो नायर के मुंह पर झापड़ मार बैठते.

"ज़रा, आहिस्ते से बात करो न मिस्टर सूरी. मेरा नया वाईफ़ ऐसा लैन्गवेज सुनेगा, तो क्या इम्प्रेशन पड़ेगा जी ?"

"आप ख़ुद शादी करके आये हैं, मिस्टर नायर !" मैंने अन्जान बनते हुए आश्चर्य प्रकट किया.

"शुक्ला जी, यही तो चक्कर हो गया जी. मुझे अचानक शादी बनाना पड़ गया जी."

"शुक्ला जी, ऐस हरामी कोलों पुच्छो, अपणी मां वाला मंदर किस दे कोलों पुछ के बणवाया सी ?"

"मिस्टर शुक्ला, हम तो आपको जेंटलमैन आदमी समझता जी. फिर आपने हमारी परमिशन के बिना मंदिर तोड़ कर अच्छा नहीं किया जी."

"मिस्टर नायर, आपने हमारी परमिशन के बिना मंदिर..."

"शुक्ला जी, बहस बंद करो जी. ...नायर, फ़्लैट कभी ख़ाली करता है ?"

"अबी आज तो सादी बना कर आया जी. मुझे थोड़ा सा टाइम तो चाहिए न इंतज़ाम करने के वास्ते."

"मिस्टर नायर, कल शाम को चार बजे हमें फ़्लैट खाली चाहिए." प्रकाश अपना निर्णय सुना कर उठ खड़ा हुआ.

"ऐसा कैसे होयेगा जी ! बस एक दिन में...! कुछ सोचते हुए नायर बोला, "हमको एक हफ़्ता का टाइम और दे दो जी."

"पहले टाइम दिया तो शादी बनाने चला गया. अबी टाइम मिलेगा तो बच्चा पैदा करने चला जायेगा... फ़्लैट हमको कल ठीक चार बजे खाली चाहए. ...समझ गया न !" सूरी साहब उठ खड़े हुए.

मेरी नज़रें अब भी जानकी को ढूंढ रही थीं. ...चौथे माले के आठवें फ़्लैट पर बदनामी का टीका लगाने वाली जानकी. ...शायद वो हालात को पहले ही भांप चुकी थी. इसीलिए नायर

की अनुपस्थिति में ही चली गयी थी. ... या फिर हो सकता है कि सो रही हो. ...किंतु बेडरूम में तो नायर की नयी पत्नी सो रही है. ...फिर जानकी...! जा चुकी जानकी !

जाने को हम सब उठ खड़े हुए. कुछ फ़िल्मों के दृश्य याद आ रहे थे तो कुछ कहानियां भी. मेरी सहानुभूति तो सदा ही किरायेदार के साथ रही थी. मकान मालिक तो मेरे लिए हमेशा पूंजीवाद का प्रतीक रहा है. आज पहली बार मकान मालिक का दर्द समझ आ रहा था, महसूस हो रहा था. ...सच बहुत दर्द होता है. रातों को नौकरियां कर करके जोड़े पैसे से बनाये घर पर जब अनिश्चितता के बादल छाने लगते हैं, तो बहुत दर्द होता है. मेरा छद्म मार्क्सवाद आज अचानक कहीं उड़न छू हो गया था. इतने तनावपूर्ण माहौल में भी मैं मुस्कुराये बिना नहीं रह पाया था जब मेरे मार्क्सवादी मित्रों ने सलाह दे डाली, "यार किसी शिवसेना वाले को जानते हो. बंबई में तो वही नैया पार लगवा सकते हैं."

शिव शिव करते घड़ी की सुई आगे को खिसक रही थी. शिव सेना के नाम पर ही मिलिंद और महेश की याद आयी थी. मिलिंद तो शाखा प्रमुख भी है. छः फुट तीन इंच लंबा महेश कभी हमारा पड़ोसी हुआ करता था. स्थानीय एम. एल. ए. परब का दायां हाथ. उसको फ़ोन मिलाया तो मेरी अपेक्षा के विरुद्ध एकदम साथ चलने को तैयार हो गया.

निर्धारित समय पर हमारी सेना नायर पर धावा बोलने के लिए सोसायटी में दाख़िल हुई. सूरी साहब ने सेनापति का पद संभाला. महेश ने गांडीव उठाया. पड़ोसी राजू ने शंख बजाया. प्रकाश, हनी और मीनाक्षी सेना के थिंक टैंक बने खड़े थे. और विश्वास पाटिल के चार सैनिक आदेश की प्रतीक्षा में थे. इस सब में मेरी भूमिका क्या थी ?

हम थोड़ा ठिठके. नीचे कंपाउन्ड में ही एक लंबा चौड़ा काला, बड़ी बड़ी मूंछों वाला, काला चश्मा लगाये एक व्यक्ति दिखाई दिया. "भाई साब, साला पूरी तैयारी में है." महेश मेरे कान में फुसफुसाया. उस काले व्यक्ति ने अंग्रेज़ी में पूछा, "डू यू रेक्गनाईज़ मी, मिस्टर शुक्ला ?"

मेरे चेहरे पर अनिश्चितता के भाव देख कर वह व्यक्ति स्वयं ही बोला, लेकिन इस बार हिंदी में, "मैं कांबले. मेरा ऑफ़िस आपके एजेंट चंद्रकांत के एकदम बग़ल में ही था. आप उदर आते थे, तो मेरे साथ भी तो इन्ट्रोडक्शन हुआ था."

"माफ़ कीजियेगा. मैंने आपको पहचाना नहीं. आप यहां कैसे ?"

"कुछ नहीं बस, वो नायर के बारे में थोड़ा बात करने का था."

महेश हत्थे से उखड़ गया, "काय झाला ?...तुम कोई गुंडा मवाली है जे हमको अपने फ़्लैट में जाने से रोकेगा."

"अरे हम ऐसा किदर बोला जी ? अपुन तो बस इन्सानियत की ख़ातिर बोला कि उसको दूसरी जगह खोजने के लिए थोड़ा बख़त दे दीजिए."

"हमको लेक्चर नहीं मांगता. अपुन का नाम महेश दलवी! अक्खा अंधेरी में किसी को भी पूछ लेने का. समझा क्या ?"

कांबले चुप खड़ा रह गया. एक बार काला चश्मा उतारा, उसे साफ़ किया, फिर से आंखों पर चढ़ा लिया. फ़िल्मी विलेन अजित को रॉबर्ट सरीखा दिखाई देने वाला कांबले, महेश की एक घुड़की के आगे सहम गया था. वह हमारी सेना के साथ चौथी माले के आठवें फ़्लैट की ओर चल दिया.

पहली बार नायर घबराया सा लगा, "शुक्ला जी, अबी तो अरेंजमेंट नहीं हुआ जी. अमको एक हफ़्ता का टाइम और दे दो जी. जिदर आपके घर में इतना बखत रहा, एक हफ़्ते में क्या फ़र्क पड़ेगा जी ?"

मेरी आंखें सूरी साहब की ओर मुड़ गयी. सूरी साहब का गुस्सा संभाले नहीं संभल रहा था. "मादर...! हमको क्या पागल समझ रखा है ? यह तेरा नाटक अभी और चलने वाला नहीं. ...हमको फ़्लैट अभी का अभी खाली मांगता है."

"शुक्ला जी, आप जेंटलमैन आदमी है. आप सोचो जी, एकदम नयी वाईफ़ को लेकर रोडसाईड पर तो नहीं जा सकता है न जी !" नायर का गिड़गिड़ाना उस गीले बालों वाली नयी पत्नी की आंखों में भय की भावना को और गहरा बना रहा था. वह तय नहीं कर पा रही थी कि अगले कुछ पलों में क्या घटित होने वाला है.

नायर कुछ याद करके एक और फ़ोन मिलाता है. काफ़ी देर तक घंटी बजने के बाद शायद किसी ने दूसरी ओर से फ़ोन उठाया है. बातचीत मलयालम में हो रही है. हमें कुछ समझ नहीं आ रहा. किंतु भयभीत आंखों को अब स्थिति ठीक से समझ आ रही है. अचानक वो आंखें सीधी मेरी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखती हैं ! चांदनी, मैं इन आंखों की बेबसी और नहीं सह पाऊंगा. जब तक नायर ने फ़ोन रखा, गीले बालों वाली डरी हुई आंखें निराशा से पूरी तरह भर गयीं. अब तो मैं भी मन ही मन प्रार्थना करने लगा था कि चमत्कार हो जाये और नायर को भाड़े का दूसरा मकान एकदम से मिल जाये.

सूरी साहब ने अपने सैनिकों को आदेश दे दिया है. वे सामान उठाने लगे हैं. मेरी निग़ाह सोफ़े के फटे हुए कपड़े पर टिक जाती है. महेश से आतंकित नायर अब समझ चुका है कि स्थिति उसके बस से बाहर हो चुकी है. सोफ़ा लिफ़्ट के ज़रिये नीचे पहुंच गया है. नायर हांफने लगा है. मैं उसकी पत्नी की ओर देखने का साहस नहीं कर पा रहा. मैं महेश को एक कोने

में ले जा कर कुछ समझाने का प्रयास करता हूं. किंतु मेरे प्रयास में प्रतिबद्धता की कमी है. महेश की डांट खा कर चुप हो जाता हूं.

नायर की आंखें आसुंओं को रोकने के प्रयास में लाल होती जा रही हैं. मैं अभी भी सोच रहा हूं कि यदि नायर समय पर भाड़ा देता और तमीज़ से रहता तो हालात ऐसे कभी न होते !

नायर मेरे निकट आ खड़ा हुआ है, ''मिस्टर शुक्ला ! प्लीज़ अपने आदमियों को रोकिए ! मेरी बात सुनिए प्लीज़ ! थोड़ी देर रुकिए ! मुझे बेइज़्ज़त करके मत निकालिए. मैं अपना सामान खुद ही उतरवाता हूं... प्लीज़ मिस्टर शुक्ला !''

मैं अचानक जैसे नींद से जाग जाता हूं. सूरी साहब और महेश की एक नहीं सुनता. नायर अपने दिल पर हाथ रख कर अचानक फ़र्श पर बैठ गया है. वह अब सोडा मांग रहा है. मुझे चिंता है कहीं मर ना जाये. उसकी पत्नी की आंखें मुझसे प्रश्न कर रही हैं, मुझ से जवाब मांग रही हैं. मैं अपनी बेवक़ूफ़ी को समझ नहीं पाता हूं. नायर के नज़दीक पहुंच जाता हूं, ''नायर तुम्हें मेरी एक बात माननी होगी.'' नायर समझ नहीं पाता. मेरी ओर देख रहा है बस ताके जा रहा है.

''नायर, तुम अपनी वाईफ़ से बोलो कि आज जो कुछ हो रहा है, उसमें मेरा कोई क़सूर नहीं है.''

''शुक्ला जी, मैंने बोला न कि आप तो जेंटलमैन आदमी है.''

नायर मुझे अपनी पत्नी के निकट ले गया है. उसकी पत्नी के काले, घुंघराले गीले बाल, चंदन के साबुन की महक ! ....'चांदनी मुझे माफ़ कर दो.' मैं होठों में ही बुदबुदाता हूं. नायर मलयालम में अपनी पत्नी को कुछ कहे जा रहा है. मैं उसकी ओर नहीं देख पा रहा हूं. बस शब्दों की ध्वनियां ही सुनाई दे रही हैं. शब्द कहीं दूर जा कर खो गये हैं.

सामान टेंपो पर लद चुका है. राजू, महेश और सूरी साहब ख़ुशी मना रहे हैं. भामा को हिदायतें दी जा रही हैं कि कल घर को अच्छी तरह साफ़ करना है. मैं अपना पर्स जेब से निकालता हूं. पांच सौ के हिसाब से दो हजार सूरी साहब की मार्फ़त सैनिकों को देता हूं. महेश बीयर की मांग कर रहा है और सूरी साहब और राजू स्कॉच की. मीनाक्षी गले मिल कर बधाई देती है. हनी बस नज़रों को एक अलग से कोण पर झुका कर बधाई कहती है. प्रकाश शायद मेरी स्थिति को समझ रहा हो, बस मेरा हाथ दबा देता है.

और मैं... इस अपराध बोध से जूझ रहा हूं कि क्या मैंने चांदनी की कुछ खोज़ती आंखों को एक बार फिर से बेघर कर दिया है ?

✉ पाल्मरस्टन रोड, हैरो एंड वेल्डस्टन,
मिडिलसेक्स, लंदन (यू. के.)

जैसे एक दिन कोई आ जाता है

✍ अनुज शर्मा

जैसे एक दिन कोई आ जाता है,
किसी ने सोचा नहीं होता
एक विचार भी
इसी तरह भीतर आता है,
किसी अनचीन्हे, किसी पहुने की तरह.
  दरवाज़े पर दस्तक देकर
  नीचे की देहरी पर बैठ
  शून्य की ओर देखने में
  रमाये रखता अपने को,
  कि जब तक सिटकिनी और
  कुंडी हटा मैं
  दरवाज़ा खोल नहीं देता.
तुम...?
स्मृति हीनता को भीतर ही भीतर
खंगाल कर मैं पूछता
अरे विचार छूट कहां रहे,
रेत की लकीरें भर लेतीं उससे भी अधिक
  बरस हुए
  लकीरें भरतीं हवाएं चलतीं,
  मैंने कहा मैं उसी दिन से बीमार चल रहा हूं
  वैसे जान नहीं पाया भैया,
  अभी तक कि पूजा की जाती क्यों ?
इसके पीछे,
ईश्वर के न्यूनतम होने तक में अनुभव का सच
और फ़तासी कितना, अभिनय भी कितना,
वेदना कितनी,
और संवेदना की सतह पर से उठता हुआ अपनापन कितना,
कि लगे ईश्वर हो कि तुम ?
  ईश्वर के माथे पर झुर्रियां नहीं होतीं,
  ईश्वर बूढ़ा नहीं होता
  इसलिए नहीं होता अंदाज भी मुनासिब.
किस तरह से हो फलप्रद
कि पता नहीं हो जब पता
कि किस जगह है माथा ईश्वर का !
अपनी लंबी छाया के साथ
चलते हुए
सोचता, उम्मीदें कभी समाप्त नहीं होंगी.
मनुष्य का बीज ही है सोच की
कोख में
उठ उठ करोगे कभी भी किसी समय तुम,
मैं फिर भी रहूंगा तुम्हारे पीछे पड़ा,
अपने
उसी निर्मल प्रश्न के संग !

✉ १३०/२, 'शुभाशीष,' रिक्की प्लास्टिक्स लेन,
श्यामनगर, रायपुर - ४९२००६

कहानी

नक़ली असली

पिता जी आज फिर नंदू को पीटने लगे थे. उसकी गणित की कुंजी को फाड़कर परे फेंकते हुए चीखे, " ये कुंजियां नक़ली किताबें होती हैं, इससे दिमाग़ भ्रष्ट हो जाता है, सिर्फ़ नक़ल करने के लिए ही बनती हैं, असली चीज़ें ही जीवन के लिए उपयोगी होती हैं."

नंदू पिताजी को कैसे समझाये कि गणित के असली मास्टर जी से कक्षा में कोई सवाल पूछना कितनी टेढ़ी खीर होती है. मास्टर जी की आंखें और छड़ी दोनों कक्षा में ऐसे घूमती रहती हैं मानो यमराज का साक्षात बेंत धरती पर उतर आया हो. कइयों का मूत तो छड़ी खाने से पहले ही निकल जाता है. अब ऐसे आड़े वक़्त में कुंजी ही एक सहारा बनती है. पिताजी तो समझते हैं कि घर के लिए दिया गया काम कुंजी में से टीप लिया जाता है. ऐसा नहीं है. कुंजी तो तभी प्रयोग में लायी जाती है जब सवाल की धार टूट जाये. कौन और कैसे पिता जी को समझाये !

अगले दिन स्कूल में भी नंदू गणित की कक्षा में पिट गया, होम-वर्क का एक सवाल जो नही कर पाया था. वैसे मास्टर जी उसे पीटते न; लेकिन मुरली ने पिछली कोई रंजिश निकालने के लिए खड़े होकर बता दिया कि नंदू और असलम आपस में यह वार्तालाप कर रहे थे कि मास्टर जी कब दुनिया को अलविदा कहेंगे. मास्टर ने छड़ी से दोनों छोकरों को धुनते हुए स्पष्ट किया, "नीच जात ! मेरा मरना चेतते हो ! अभी तो मेरे रिटायरमेंट के भी तीन साल बचे हैं और तब तक तुम यदि लगातार पास भी होते गये तो भी इसी हाई स्कूल में रहोगे और मैं ही तुम्हारी खाल उधेड़ता रहूंगा. बदज़ात और देश पर कलंक हो तुम."

नंदू और असलम के सपनों पर जैसे बाढ़ का पानी फिर गया था.

स्कूल छूटते ही नंदू और असलम ने मुरली को धर दबोचा. असलम ने उसका बस्ता एक ओर खींचते हुए कहा, "क्यों बे, चमरिंडे ! अब बोल. मास्टर जी के सामने तो तेरा मुंह खुल गया."

मुरली अपनी आंखों में पछतावे का भाव लिये उन दोनों को घूर रहा था, तभी बोला, "देख, चमरिंडा मत बोल, हां !"

नंदू ने उसकी कमर में चुटकी कसते हुए कहा, "चमरिंडे को चमरिंडा न कहें, तो क्या नचमुंडा कहें ! स्साले, उस दिन मास्टर की एक ही छड़ी पड़ी थी तेरे हवाई अड्डे पर, मूत तो तेरा वहीं निकल गया था ! तूने क्या सोचा, हम भी तेरे जैसे हैं ? मास्टर के डंडे खा खाकर तो हम पक गये हैं. ये देख, ख़ून भी निकल आया था उंगली से. हम नहीं डरते, आज़ादी के दीवाने हैं. ख़ून देते हैं, आज़ादी पाते हैं."

अंतिम वाक्य उसने किसी हीरो इश्टाइल में कहा था. आज उन्होंने हिंदी कक्षा में कविता के दौरान पढ़ा था, 'तुम मुझे ख़ून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा.' इसी वाक्यांश को उसने अभी व्यावहारिक करते हुए जोड़ दिया था.

"नंदू, तू इस मुसल्टे की बातों में मत आ ! मुझे पता है कि ये इस देश के लोग नहीं हैं. मास्टर जी ने इसीलिए तुम्हें देश पर कलंक कहा था." मुरली ने नंदू का पक्ष लेने के लिए यह बात कही.

राजीव सिंह

नंदू कुछ पल तो असमंजस में खड़ा डोलता रहा, फिर एकाएक बोला, "तुझे कैसे पता ?"

"मैंने त्रिवेदी मास्टर जी को यह कहते सुना था. और मैंने एक दिन अख़बार में पढ़ा भी था कि इनका देश पाकिस्तान है."

नंदू को एकाएक याद आया कि अख़बार में एक दिन उसने भी नक़ली चीज़ों के बारे में पढ़ा था. उसने पढ़ा था कि असली उत्पादों पर उस कंपनी का ३-डी लोगो चिपका रहता है. बाक़ी सब नक़ली होता है. असलम क्या नक़ली नागरिक है ? और वो गणित की कुंजी भी जिसे कल रात पिता ने फाड़कर फेंक दिया था ? यह क्या गड़बड़ है ?

असलम ने चिढ़ते हुए कहा, "चमरिंडे, यह देश तो तेरे बाप का भी नहीं हैं, यहां तो जो राज करे यह उसी का है."

"देख, चमरिंडा-चमरिंडा मत बोल, नहीं तो तेरे अब्बू से शिकायत कर दूंगा."

अब्बू का ज़िक्र आते ही असलम की पैंट ढीली पड़ गयी, और उधर नंदू की नसें कांप उठीं. उसने सुझाव दिया, "देखो, जो बात है उसे यहीं निबटा लो. न तो कोई किसी के घर में शिकायत करेगा और न ही मास्टर जी तक बात पहुंचाये."

तीनों ने सहमकर इस बात पर ख़ामोश सहमति जतायी.

"तू एक बात बता कि मास्टर जी यदि इस दुनिया को अभी छोड़ देंगे, तो डंडे खाने से तो तू भी बचेगा न!" असलम

ने अपना तर्क सामने फैला दिया.

मुरली मुंह फाड़े सोच की डूब में था.

"ये डंडे-फंडे सब नक़ली हैं, इन्हें खाकर कोई नहीं पढ़ता. तूने देखा नहीं, वो जो गली में अंगरेजी स्कूल खुला है, वहां बच्चों की पिटाई नहीं होती. यह तो हमारा ही स्कूल है जहां जानवरों की तरह हमें उधेड़ देते हैं." नंदू ने भी अपना तर्क दिया.

मुरली ने मुंह खोला, "जी नहीं, अंगरेजी स्कूल सब नक़ली हैं." मास्टर जी बता नहीं रहे थे कि हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा है और इसी से देश का विकास हो सकता है. हमारा ही स्कूल असली है, समझे !"

कुछ पल तो नंदू ऐसे बौखलाया रहा जैसे अंधेरे में किसी मसान को देख लिया है.

असलम ने उसके आतंक को तोड़ा, "अबे चूतिया, यदि अंगरेजी स्कूल नक़ली होता तो हमारे हेड-मास्टर साहब अपनी लड़की को वहां क्यों डालते ! और वो डंगर-डॉक्टर का लड़का भी वहीं पढ़ता है, और बैंक मैनेजर का लौंडा भी."

बात सही थी. इस बार तीनों एक दूसरे का मुंह ताक रहे थे.

"तो तुम्हारे सोचने से मास्टर जी मर जायेंगे क्या ?" मुरली ने उन्हें दार्शनिक बना डाला.

असलम ने व्यंग्य किया, "हां, जैसे चमार के बोलने से भैंस नहीं मरती, वैसे ही मास्टर जी..."

मुरली ने ग़ुस्से में टोक दिया, "देख असलम ! मैं अभी जाकर तेरे अब्बू को बता दूंगा कि तू मुझे ऐसे बोल रहा है."

असलम भय और चंचलता दोनों में घुलकर बोला, "अबे, मैं तुझे नहीं चिढ़ा रहा, मैं तो कहावत बोल रहा हूं. क्यों नंदू ? बता, मास्टर जी ने लोकोक्ति-मुहावरे लिखवाये थे न उस दिन ?"

"हां यार, मुरली ! तूने अभी तक होम-वर्क में नहीं किये?" नंदू ने अपने पक्ष को बचाने और मुरली को डराने के लिए ऐसा कहा.

मुरली ग़ुस्से में भर रहा था, क्योंकि वे दो थे और उन्हीं का तर्क भारी पड़ रहा था. उसने अपने पक्ष को मज़बूत करने के लिए ग़ुस्से में ही कहा, "भैंस का मांस खाते हो तुम लोग. और नंदू, तू इसके साथ रहता है न, उस दिन भी तू इसके घर गया था."

नंदू अंदर तक कांप गया. वह बौखलाया खड़ा रहा. तभी असलम ने भी शब्दों का प्रहार किया, "गांव में जब भैंस मरती है तो सबसे पहले तुम्हीं लोग उसकी खाल निकालने पहुंचते हो. तुम सब जहन्नुम में जाओगे."

किसी की खाल नोचना अधिक अमानवीय लगने लगा था.

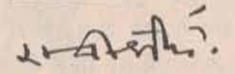

४ अगस्त, १९६४, सुंदर नगर (हि. प्र.); एम. ए. (हिंदी)

'कथाबिंब' के हितैषी व पत्रिका के नियमित कथाकार

नंदू अभी तक मानो कोमा में मुंह खोले खड़ा था.

मुरली इस बार फिर बातों में पिट गया. अपनी अंतिम भड़ास को निकालने के लिए बोला, "चमड़े से जब जूते बन जाते हैं न, तब तुम लोग ही पॉलिश कर करके पहनते हो. त्रिवेदी मास्टर जी भी तो पहनते हैं. उनका बटुआ भी तो चमड़े का ही बना है. चमड़े की चीज़ों से तब घिन नहीं आती तुम सबको."

इस बार तो असलम बे-ज़ुबान रहा.

"यदि हम लोग जूते न बनायें तो तुम सबके पैर भैंसों के खुरों जैसे हो जायें."

"तू क्या समझता है कि चमड़े के जूते नहीं बनेंगे तो क्या बाज़ार में कपड़े के जूते नहीं बनते ? बनते हैं ? अपने पी. टी. मास्टर भी तो कपड़े के जूते पहनते हैं." नंदू ने बात जोड़ी.

"अबे, जुलाहे ! कपड़े के जूतें किसी करम के नहीं होते. फुटबाल खेलते समय पी. टी. मास्टर तो ख़ुद चमड़े के जूते पहनते हैं." मुरली ने नंदू को उसकी जात का वास्ता दिलाकर कड़ा प्रहार किया था.

चूंकि मुरली बात का थप्पड़ मार चुका था, इसलिए नंदू खिसियाकर बोला, "देख, अब तू ख़ुद मुझे ऐसे बोलेगा तो हम भी तुझे चमरिंडा बुलायेंगे. फिर जो होगा, देखी जायेगी."

"तो तुम मुझे क्यों चिढ़ा रहे हो ?"

"हम तुझे कहां चिढ़ा रहे हैं ! हम तो तुम्हारे काम की बात कर रहे हैं, तुम इसमें चिढ़ जाओ तो हम क्या करें !" असलम ने मानो न्यायाधीश बनकर न्याय किया.

"तो फिर मैं भी तुझे मुसल्टा कहूंगा, और नंदू को जुलाहा."

"क्यों ?"

"तो फिर तुम भी मुझे मेरे नाम से बुलाओ."

"देख, नाम भी तेरा अपना अपना है और जात भी. तुझे मुरली कह लो या चमरिंडा, बात तो एक ही है."

"तो ठीक है, मैं भी ऐसे ही करता हूं, क्योंकि असलम तेरा नाम है और मुसल्टा तेरा धरम."

नंदू और असलम पटकी खाये हुए देख रहे थे.

नंदू ने बात की धार को पकड़ा और बोला, "धरम-वरम कुछ नहीं होता. उस दिन मास्टर जी बता नहीं रहे थे कि सभी धरम बराबर हैं."

मुरली ने बीच में टोक दिया, "मास्टर जी ने कबीरदास के दोहे की, प्रसंग-व्याख्या में यह भी तो लिखवाया था कि मनुष्य से उसकी जाति नही, ज्ञान पूछना चाहिए, मोल तलवार का होता है, मयान का नहीं. होम-वर्क किया हो तो कॉपी देख लो अपनी."

"चुप रह! ज़्यादा ज्ञान मत झाड़. देश का असली नागरिक वही होता है जो देश की ख़ातिर अपने धरम को भी छोड़ देता है, बाक़ी सब झूठे और नक़ली हैं. जैसे भगत सिंह ने देश के लिए अपने धरम को भी छोड़ दिया था. तू छोड़ सकता है अपना धरम ?" नंदू ने मानो मुरली के सामने अग्नि परीक्षा का यज्ञ जला दिया हो.

"अपनी कहो. दूसरों से सवाल करना तो आसान होता है!" मुरली ने भी अपना जाल तान दिया.

नंदू और असलम अहम से भर उठे. असलम बोला, "ऐसा है तो सिद्ध करके बताना होगा."

नंदू ने उसे अजब व्यंग्य में देखा फिर कहा, "तुझसे त्रिभुज के तीन कोण तो सिद्ध नहीं होते, अपनी देश-भक्ति क्या सिद्ध करेगा !"

असलम की घंटी अपने ही दोस्त से बज गयी थी. वह झूठी हंसी में लहरा रहा था. हंसने के बाद बोला, "तुम दोनों ने इतिहास नही पढ़ा. इंडिया पर हमारे राजा अकबर महान राज करते थे. यह देश मुसलमानों का ही था पहले."

"यहां तो अंगरेज भी राज करते थे." मुरली ने टोका.

"अंगरेज दूसरे मुल्क से आये थे."

"कहां से ?" मुरली ने उसके ज्ञान को खंगालना चाहा.

"अमरीका से," उसने रटा-रटाया एक देश बता डाला.

"जी नहीं."

"अबे तो तू बता दे !" नंदू कुछ खिसियाकर बोला.

"इंग्लैंड से."

"तुझे कैसे पता कि इंग्लैंड से आये थे ?" यह सवाल मानो दोनों की तरफ से मुरली को दिया गया था.

"मास्टर जी ने बताया था."

"उस बुढ़ऊ मास्टर को क्या पता. उसे यह तक तो पता नहीं कि उसकी छोरी कल्लू हलवाई से फंसी हुई है. अमरीका-इंग्लैंड की बातें क्या करेगा. दुनिया का सबसे बड़ा देश अमरीका ही है, वही सब जगह राज कर सकता है." नंदू ने तर्क-वितर्क को फैलाया.

"हां, अमरीका में लोग टट्टी भी कुरसी पर बैठ कर करते हैं और साथ में अख़बार पढ़ लेते हैं." असलम ने अपने को जोड़ना चाहा.

नंदू ने फिर उसकी पीपी बजायी, "चुप, स्साले ! वैसी टट्टी तो अपने डंगर-डॉक्टर साहब के घर भी बनी हुई है."

"अच्छा !" अपनी बजती हुई जानकर असलम नक़ली तरह से हैरान हुआ फिर बोला, "लेकिन हम उनके जैसा क्यों बनना चाहते हैं ? मोना दीदी बता रही थीं कि यदि हम लोग अंगरेजी नहीं सीखेंगे तो शहर में नौकरी नहीं पा सकते."

"तू नौकरी करेगा शहर जाकर ! तू तो जर्मन भी सीख ले तब भी तुझे कोई नौकरी नहीं देगा."

"क्यों ?" असलम हैरान था.

"क्योंकि तेरी शक्ल ही बाबा जकड्डीन जैसी है."

इस बार तीनों ठहाका मारकर हंसे. असलम समझ नहीं पा रहा था कि नंदू क्यों उसकी खाल खींचने पर उतर आया है?

"असली बात पर आओ. हमें अब यह सिद्ध करना है कि कौन सच्चा भारतवासी है. जो इसे सिद्ध कर देगा वही सच्चा नागरिक कहलायेगा, बाकी ग़द्दार. मंज़ूर ?" नंदू ने ऐलान कर दिया.

"हां, मंज़ूर." तीनों ने हामी भरी.

"एक बार फिर सोच लो. देश के लिए धरम-जात सब छोड़ना पड़ेगा.

"हां-हां, छोड़ेंगे."

"ठीक है, फिर यह देश उसी का होगा."

"तो अब ऐसा करना होगा कि हम तीनों को यह सिद्ध करने के लिए अपने-अपने घर से एक ऐसी चीज़ लानी होगी जो नक़ली हो. क्योंकि हमारी लड़ाई नक़ली चीज़ों से है और नक़ली चीज़ की एक पहचान तो यह होती है कि उस पर '३-डी' की चेपी नहीं लगी होती. तुम दोनों बेवक़ूफ़ों को पता है न कि '३-डी' की चेपी कैसी होती है ?" नंदू ने उनका इंटरव्यू लिया.

दोनों बौखलाये से ऐसे खड़े थे मानो होशो-हवास खो बैठे हों.

उनकी ऐसी हालत को देखकर नंदू को तरस आया. उसने रास्ता खोला, "मैं अभी घर से तुम्हें लाकर दिखा दूंगा कि '३-डी' की चेपी कैसी होती है." कुछ रुककर बोला, "और कल तुम्हें कबीर दास के दोहों में से एक एक ऐसा दोहा याद करके लाना होगा जिससे यह सिद्ध हो जाये कि हम भारत के असली नागरिक

हैं, समझे ! जो सिद्ध नहीं कर पायेगा, वह गद्दार कहलायेगा और हमारी मित्र मंडली में शामिल नहीं होगा."

उसके बयान को सुनकर असलम ने ही प्रश्न किया, "यदि हम तीनों ही सिद्ध नहीं कर पाये तो !"

नंदू चिढ़ गया, बोला, "त्रिवेदी मास्टर जी का जो तबेला है न, वहां जाकर तीनों....." उसने वाक्य बीच में छोड़कर एक अश्लील इशारा हवा में उछाल दिया.

तीनों के चेहरे पर तनाव खिंच आया था.

नंदू ने फिर ऐलान किया, "जो चीज़ें हम तीनों घर से लायेंगे, वो नक़ली भी होनी चाहिए और काम की भी. बेकार की चीज़ों की कोई क़ीमत नहीं होगी. बाद में मत कहना कि फैसला ग़लत है. याद रखो, देश-भक्त बनने के लिए हमें फूलों का नहीं, काटों का सामना करना पड़ेगा. यहां आकर यह भी पूछा जायेगा कि उस चीज़ को लेने के बदले तुम्हें क्या मिला."

असलम ने पूछा, "मैं कबीर दास का कौन सा दोहा याद करूं ?"

"ये सब अपना-अपना सोचना है, ऐसा दोहा जो हमारे धरम-जात की कुरीतियों को बखान करे और हम उसमें विश्वास करते हों." नंदू बोला.

"लेकिन हमारी इस बात को त्रिवेदी मास्टर जी नहीं मानेंगे. वो तो हमें अछूत ही मानते हैं." इस बार मुरली ने कहा.

नंदू ने उन्हें समझाने के लिए अपनी एक किताब निकाली और सिर पर रखते हुए स्पष्ट किया, "विद्या की क़सम है, अछूत हम लोग नहीं है. अछूत वे लोग होते हैं जिन्हें छूने से भी घिन आये, जैसे अपने मास्टर जी की बीवी."

"बीवी !" दोनों एक साथ बोले, फिर पूछा, "वो कैसे ?"

"वो ऐसे कि उनकी बीवी का मनोज पान वाले से टांका भिड़ा हुआ है. अब तुम ही बताओ कि यदि तुम किसी छोकरी से प्यार करने लगो और वो किसी और से फंस जाये, तो तुम्हें उसे छूना अच्छा लगेगा ? नहीं न ! फिर अछूत कौन लोग होते हैं ! ये जो 'एस टी डी' की बीमारी फैली है, वो ऐसे ही अछूत लोगों के कारण फैली है. असली अछूत ये ही हैं."

नंदू का बयान सुनकर दोनों बड़बुक-से ताकने लगे थे, क्योंकि उनके पास व्यवहारिक अनुभव नहीं था लेकिन जन्म-जात भाव से वे इस तरह के व्यक्ति का अछूत होने की कल्पना बख़ूबी कर सकते थे.

असलम ने धीरे से पूछा, "यह 'एस टी डी' भी बीमारी है क्या ?"

"हां-हां, 'एस टी डी' का मतलब होता है, 'एड्स'. पूरी दुनिया में इसी बीमारी से दूर रहने का प्रचार करने के लिए फोन की दुकान पर 'एस टी डी', 'आई एस डी', और 'पी सी ओ' लिखा रहता है. और इसका मतलब होता है कि जिस भी देश में जितने

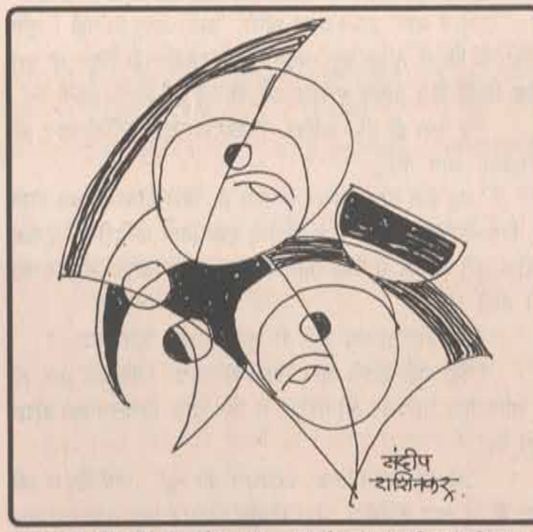

लोगों को बीमारी फैलती जाये, उसकी जानकारी अमरीका को दे दी जाये."

नंदू की इस जानकारी से दोनों की आखें फटी की फटी रह गयीं.

"तो क्या अछूत लोग अमरीका में भी होंगे ?" मुरली ने अपनी ज्ञान पिपासा को बुझाने के लिए पूछा.

"हां, क्यों नहीं होंगे ! लेकिन लोग वहां उनसे ऐसी घिन नहीं करते, जैसी हमारी देश में करते हैं." नंदू ने अपना शब्द-कोष खोला.

असलम ने अपना नक़्शा फैलाया, "अब तुझे पता चला कि क्यों हम मास्टर जी का मरना चेत रहे थे ? यही वजह थी. यदि हम असली और नक़ली अछूतों में फ़र्क नहीं पता लगा पायेंगे तो हमारा देश पिछड़ता चला जायेगा. देखो, जैसे तुम लोग मरी हुई भैंस की खाल काटकर ले जाते हो, वैसे ही ये मास्टर लोग हम ज़िंदा विद्यार्थियों की चमड़ी उधेड़ते रहते हैं. हम कब तक ऐसे ही मार खाते रहेंगे ! मेरे अब्बू के पास तो इतने पैसे ही नहीं हैं कि मुझे अंगरेजी स्कूल में डलवा दें, वर्ना मैं तो कब का वहां चला गया होता." उसकी अंतिम सांस में कवियों का दुःख समाया हुआ था.

नंदू ने हवा में अपना वाक्य उछाला, "अरे! ये हमारा स्कूल कोई स्कूल है? ये तो बूचड़ख़ाना है. यहां हम जैसे देश-भक्तों की कोई क़ीमत नहीं है. मैंने सुना है कि मास्टर जी कह रहे थे कि हमारे जैसे अछूत वेद नहीं पढ़ सकते. जानते हो क्यों ?"

"क्यों ?"

"क्योंकि इसमें ऐसी अश्लील बातें लिखी हुई हैं कि यदि कोई इसे मानने लगे तो उसे 'एस टी डी' हो जाये."

"सच !" दोनों चौंक गये.

नंदू ने मानो उनके कान खींचे, "अबे, उल्लू के पट्ठो ! तुम्हें लगता है कि मैं तुमसे झूठ कहूंगा ! विश्वास नहीं होता तो पूछ लेना किसी दिन अपने मास्टर जी से."

"ये 'एस टी डी' आख़िर बीमारी क्या है ?" असलम की उत्सुकता जाग गयी.

"यह एक इंटरनेशनल बीमारी है. जैसे विश्व-परिषद होती है, विश्व-शांति होती है, वैसे ही यह एक विश्व-बीमारी है. इसके मरीज़ पूरी दुनिया में पाये जाते हैं, उनमें एक हमारे मास्टर जी की बीवी भी है."

तीनों का ठहाका हवा में मुक्त होकर फैल गया.

"नंदू, तुझे इतना ज्ञान कहां से आया ! पिछली बार तो तू सामाजिक अध्ययन की परीक्षा में फेल था." असलम उसे टटोल रहा था.

"अबे यह सामाजिक अध्ययन की नहीं, पॉलिटिक्स की बात है. तू क्या समझेगा, तेरा दिमाग़ मोटा है. हां, मुरली समझ गया.

"तो इस बीमारी का इलाज क्या है ?"

"इलाज ? अछूत की बीमारी का इलाज सिर्फ़ समझ से प्राप्त किया जा सकता है. इसके लिए साधना की ज़रूरत पड़ती है."

"महात्मा बुद्ध की तरह ?" असलम ने अपनी जानकारी बघारने के लिए लपककर कहा.

"नहीं, कबीर दास की तरह." इस बार मुरली ने जोड़ा.

"देखा, मैंने कहा था न कि मुरली सब समझ गया है !"

"लेकिन मुझे समझ क्यों नही आती ?" असलम ने अपनी बेबसी को बड़े ही नाटकीय ढंग से फैलाया.

"क्योंकि तू हर समय सोया जो रहता है."

"उठ तो जाता हूं...."

"अच्छा यह बता कि तू कब से नहीं नहाया."

"आज पांचवां दिन है."

"बहुत अच्छा किया, दुनिया में वैसे भी पानी की कमी है." नंदू ने व्यंग्य फेंका.

"दुनिया में पानी की कमी तो नहीं है," मुरली ने सधी आवाज़ में कहा.

"तुझे कैसे पता ?" नंदू ने ही पूछा.

"विज्ञान वाले मास्टर जी ने बताया तो था कि हमारी पृथ्वी नीला ग्रह कहलाता है क्योंकि तीन-चौथाई पानी ही पानी जो भरा है." मुरली ने बता दिया.

दोनों उसके ज्ञान से अंदर ही अंदर कुढ़ रहे थे.

नंदू बोला, "ये मास्टर लोग भी सब एक नंबर के झूठे हैं. उस दिन त्रिवेदी मास्टर बता रहे थे कि सिंचाई के लिए पानी की कमी है, महानगरों में पानी का संकट गहराता जा रहा है. इसलिए मैं तुम्हें कहता हूं कि इनकी बात का कभी भरोसा मत करो. ये दूसरों को झूठ बताते हैं कि हम लोग अछूत हैं."

"मैं भी यही बात सोच रहा था." असलम ने नंदू की शैली अपनाई, लेकिन उन दोनों ने कुछ ख़ास ध्यान नहीं दिया.

इसके बाद वे रुख़सत हुए.

❒

अगली सुबह तीनों मिले.

नंदू ने ऐलान किया, "देश-भक्ति सिद्ध करने के लिए तैयार हो ?"

असलम बोला, "हम तो तैयार है, अपनी बता."

"मैं भी तैयार हूं." कुछ रुककर बोला, "दिखाओ, क्या लाये हो."

"अपने अब्बू की लट्ठी." असलम न लट्ठी सामने करते हुए कहा.

"और तुम, मुरली !" नंदू ने पूछा.

"अपने बाबू जी का चश्मा, यह देखो."

नंदू ने अपनी जेब से लायी हुई वस्तु निकाली और कहा, "अपने पिता जी के दो नक़ली दांत लाया हूं, ये रहे."

छोटी चुप्पी के बाद नंदू ने प्रश्न किया, "अपनी अपनी चीज़ों को सिद्ध करो कि ये नक़ली हैं."

असलम बोला, "अब्बू मुझे हमेशा डांटते-फटकारते रहते हैं. क्या उन्हें यह नहीं पता कि मैं उनके बुढ़ापे का सहारा हूं ? इसलिए उनको सबक़ सिखाने के लिए मैं उनकी इस नकली लट्ठी को उठा लाया."

"शाबाश ! तुम पास गये. अब मुरली, तुम्हारी बारी."

"बच्चे ही मां-बाप की आंख का तारा होते हैं, लेकिन मेरे बाबू जी जब फ़ुर्सत मिले तभी शराब पीने बैठ जाते हैं. मां पैसे न कमाये तो घर का ख़र्च चलाना दुश्वार हो जाये. इसलिए मैंने उनके इस नकली चश्मे को उड़ा लिया. अब वे जब पैसे नहीं कमा पायेंगे तभी उन्हें दिखाई देगा कि दारू के अलावा घर में मां और बच्चे भी हैं जिसका उन्हें ख़याल रखना है."

"शाबाश! तुम भी पास हो गये."

"अब तुम भी सिद्ध करो," असलम ने कहा.

"पिता जी के ये नक़ली दांत सिर्फ़ उनके मुंह की शोभा बढ़ाते थे. और जब वह इन दातों को निकाल लेते हैं तो गंदी गालियां नहीं दे पाते और जब लगा लेते हैं तो खाना नहीं खा पाते. उनको सबक़ मिले, इसलिए मैं इन्हें चुपके से उठा लाया. मेरी कुंजी उन्होंने यही कहकर फाड़ी थी कि असली चीज़ें ही जीवन के लिए उपयोगी होती हैं."

असलम और मुरली सधी आवाज़ में बोले, "वाह! तुम भी पास हो गये."

"तो आओ, मिलकर इन नक़ली चीज़ों को जला डालें." नंदू ने हुंकार भरी.

"पहले कबीर के दोहे तो सुनाओ !"

असलम ने कहा तो नंदू और मुरली हैरानी में उसे देखने लगे.

नंदू ने कहा, "हां, चलो असलम, तुम्ही पहले सुनाओ."

"मैं ! ...तो सुनो -"

'कांकर पाथर जोरी के मस्जिद ली बनाय,

ता चढ़ मुल्ला बांग दे, क्या बहरा होय खुदाय ?'

"वाह ! वाह ! असलम तूने तो कमाल कर दिया. अब मुरली, तेरी बारी."

"सुनो -

'पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार,

ताते यह चक्की भली, पीस खाय संसार.'

सुनने वालों ने तालियां बजा डाली.

"अब तुम्हारी बारी, नंदू !"

"हां-हां, सुनाता हूं -"

'ऊंचे कुल का जनमिया करनी ऊंच न कोई,

सुबरन कलस सुरा भरा साधू निंदै सोई.'

दोहा सुनकर असलम मुंह खोले ताक रहा था, क्योंकि उसे इसका अर्थ नही पता था.

"तुम दोनो को अपने-अपने दोहों का अर्थ भी पता है न!"

"हां-हा, पता है. तुझे पता है न, नंदू !"

"हां, पता है. तुम इन दोहों मे विश्वास करते हो ?"

"हां, करते हैं."

"तो फिर ठीक है. तुम मुझे विश्वास दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा." नंदू ने ऐसे लहज़े मे कहा मानो सुभाष चंद्र बोस उसके अंदर घुस आया था.

"देते हैं."

"आज से हम असली देश भक्त हुए. हमारी दोस्ती एक मिसाल बनेगी. लेकिन यह बताओ कि तुम्हें अपने-अपने बापो की चीज़ें लाने के बदले मे क्या मिला ?"

असलम को अपने अब्बू के कहे हुए जुमले याद आ गये... "लाहोल विला कुव्वत ! किस कंबख्त की जुर्रत हुई कि मेरी लठ्ठी को हाथ लगाये ! उस नमक हराम के लिए आज का दिन क़यामत का जैसा होगा. अरे, असलम की मां! ज़रा गुसलखाने मे देखो, कहीं किसी बेटी चो.... ने मेरी लठ्ठी वहां तो नही फेंक दी !"

मुरली को अपने बाबूजी याद आये... "किस को मेरे चश्मे को उठाने की पड़ी ! एक बार पता चल जाये तो उसकी मां.. में डंडा डाल दूं."

नंदू को अपने पिताजी याद आये... "किस भो... वाले को मेरे दांतों की ज़रूरत पड़ गयी. अभी तो यहीं रखकर गया था मैं !"

असलम बोला, "आज सुबह-सुबह इतनी बड़ी गाली खाने को मिली अब्बू के मुंह से."

"और तुम्हें, मुरली !"

"मुझे भी."

"और मुझे भी." नंदू ने जोड़ दिया और बोला, "देश-भक्तों, ये गालियां नहीं हैं, हमारी छाती पर बरसी गोलियां हैं ! ये सब सहना भी हमारी भक्ति का एक भाग है.

दोनों सुनकर फूल उठे.

"लाओ, अब इन नकली चीज़ों का जनाज़ा निकाल दे."

असलम के अब्बू की लठ्ठी को ज़मीन मे गाड़कर, उसकी चोटी पर मुरली के पिता जी का गांधी चश्मा तथा उसके नीचे नंदू के पिता जी के दो नकली दांतों को फंसाकर अग्नि के हवाले कर दिया.

वहां नारे भी लगाये गये - "इंक़लाब... ! ज़िंदाबाद !"

कल देश-भक्ति सिद्ध करने के चक्कर मे जो समय ख़र्च हुआ, इससे गणित का काम तीनो ही नही कर पाये थे. सज़ा मिलना लाज़मी था. कक्षा में तीनों बापू के बंदरों की माफ़िक कान पकड़े खड़े रहे. मास्टर जी ने फ़टकार भी लगायी थी - "हरामखोरों! तुम जैसे लोग देश के लिए कलंक हैं. मेरा मरना चेतते हो ! तुम्हे विद्या कभी न आयेगी. ऐसे ही नीच जात गंवार के गंवार रहोगे."

नंदू अपने सीने मे आग लिये हुए यह सोच रहा था कि नक़ली देश-भक्तो का प्रतिनिधित्व करने वाले पुतले का जनाज़ा वे सुबह निकाल चुके हैं. मास्टर जी तो मर चुके हैं, उनका मरना वे अब नही चेतेंगे.

तभी घंटी बज गयी. मास्टर जी अभी कक्षा से बाहर ही गये थे कि अंदर से एक स्वर ज़ोर से उभरा - "भारत माता की, जय !"

मास्टर जी ने मुड़कर देखा : तीनों बंदर चिल्ला रहे थे- "भारत माता की, जय !"

कुछ ही पलो मे पूरी कक्षा एक ही स्वर मे बोल रही थी- "भारत माता की, जय !"

मास्टर जी की रुकी हुई पुतलियां देखकर सन्नाटे ने अपने को घेर लिया. सभी को अपनी ख़ैर मनाने के ख़्वाब दिखने लगे थे, लेकिन मास्टर जी हैरान थे कि कल तक नंदू और असलम मुरली के दुश्मन थे, आज वे तीनों एक हैं !

और मास्टर जी असमंजस मे थे कि आज की इस हरकत की उन्हें क्या सज़ा दें !

बीए-४५ (डब्ल्यू),
शालीमार बाग, दिल्ली - ११००८८.

कहानी

सड़क के उस पार

महानगर जहां ख़त्म होता है उसके आगे से ही शुरू हो जाती है झुग्गी-झोपड़ियां. इन्ही झुग्गी-झोपड़ियों के बीच एक झोपड़ी मे रहती है ९-१० बरस की चुन्नी और उसकी बूढ़ी नानी मां.

रात का आधा पहर बीत चुका था पर चुन्नी की आंखों में नींद का नामोनिशान न था. नानी मां को बड़ी मुश्किल से नींद आयी थी. एक तो बुढ़ापा ऊपर से बीमारी. वह दो दिन से काम पर भी न जा सकी थी. लोगों का चूल्हा चौका करके वह किसी तरह अपना और मासूम चुन्नी का पेट पाल रही थी.

घर में जितना भी अन्न था वह धीरे-धीरे खत्म होता गया. खेलती-खाती चुन्नी को खाली हो चुके अनाज के बर्तन दिखने लगे थे. मगर उसे इससे भी बड़ी चिंता नानी मां के इलाज को लेकर थी. घर मे पैसे न होने के कारण वह नानी मां को डॉक्टर को न दिखा सकी थी. वह जैसे-तैसे रफ़ियत की दुकान से दवा की गोली ले आती. पर आज उसने भी उसे दवा व राशन देने से साफ़ मना कर दिया था.

चुन्नी जमीन पर लेटी थी, लेकिन उसकी निगाहे कढ़ाई, पतीले, ठंडे चूल्हे पर टिकी थी. [illegible] चूल्हा सहसा उसकी नज़रों में भभक पड़ा और कढ़ाई मे लाल-लाल, फूली-फूली, नरम-नरम पूड़ियां छन-छन कर तैरने लगी मगर कुछ ही पलों मे चूल्हे की आग जाने कहां छूमंतर हो गयी और वह फिर पहले की भांति मुर्दे-सा ठंडा हो गया.

उसके तसव्वुर मे अभी-अभी आयी इन गरम-गरम पूड़ियो ने उसके मुह मे पानी भर दिया था. वह घुटती हुई करवट लेकर सोचने लगी, 'कि जब नानी मां के साथ भड़भड़ी काका के यहां दावत मे गयी थी, तब एक नहीं, दो नहीं, भर पेट पूड़ियां और वह भी तरकारी और रायते से खायी थी !... इतना अच्छा खाना अगर रोज़ खाने को मिलता.... .' चुन्नी एक प्रौढ़ की भांति सोच रही थी.

यकायक उसने लालटेन की रोशनी में देखा - एक छिपकली मुंह में कीड़ा दबाये चली जा रही थी. कई विचार उठे - 'इससे अच्छा वह छिपकली ही होती जो इधर-उधर मुंह तो मार लेती.' फिर उसे उस विल्ली का स्मरण हो आया जो मुंह पर ज़बान फेर रही थी. उसने पुनः सोचा - 'काश मैं बिल्ली ही होती तो आस-पास के घरो में चोरी तो कर लेती.' लेकिन उसके नन्हे दिमाग ने इस बात की इजाज़त नहीं दी...

'नही-नही, चाहे कुछ भी हो जाये मैं चोरी नही करूंगी.' वह पैर फैलाती हुई नानी मां के चेहरे को ख़ामोशी से देखने लगी.

'नानी मा ! तुम तो कहती थीं, भगवान सब का पेट भरता है ? पर हम लोगों का पेट क्यो नहीं भरता वह ?' चुन्नी डूबती जा रही थी. मारे भूख के उसकी अतड़ियां कुलबुला रही थीं. उसने पेट को कस कर दाब लिया, फिर भी न रहा गया तो उठकर उसने गले को पानी से तर किया और जमीन पर आ लेटी. आंखे अभी भी खुली थीं. उसका नन्हा मस्तिष्क बड़े-बड़े सवालों में उलझा था - 'अब कहां से आयेगा खाना ? कैसे उसका और नानी मां का पेट भरेगा ? कौन दे देगा उसे इतने पैसे कि रोटी भी मिल सके और नानी मां की दवाई भी ?... नानी मां तो कहती थी, अल्लाह की नज़रो मे सब बराबर हैं... पर कहा बराबर हैं सब ? अगर बराबर है तो वो क्यो नही भरता हमारा पेट ?... झूठ कहती है नानी मां !... अल्लाह तो सिर्फ़ कम्मो मौसी का है, पपली का है, सफिया का है, बिंदिया का है... लेकिन मेरा नहीं है वह!... वे सब मुझे अपने अच्छे-अच्छे खिलौने दिखा कर चिढ़ाती हैं.'

राजेश मलिक

तभी दूर से बजते घंटे की आवाज़ से वह चौंक पड़ी और करवट बदलती हुई बायी तरफ़ पलट गयी. अचानक उसे कम्मो मौसी की बात याद हो आयी जब वह चंदा से कह रही थी- 'अरी चंदा, तू ख़ूबसूरत है, जवान है, तेरे लिए पैसे की क्या कमी... सड़क के उस पार तू भी औरो की तरह खड़ी हो जा, फिर देख पैसा कैसे बरसता है तुझ पर.'

चुन्नी को अच्छी तरह याद है यह बात. ख़ूबसूरत तो मैं भी हूं ! सभी तो कहते हैं, फिर तो पैसे मुझे भी खूब मिल जायेंगे... मैं भी सड़क के उस पार चली जाऊं तो ?... इसीलिए तो सफ़िया, बिंदिया, पपली मुझसे जलती हैं... नानी मां तभी तो मुझे नज़र का टीका लगाती है !... कल मैं भी जाऊंगी सड़क के उस पार, फिर क्या ! पैसा मेरे भी क़दम चूमेगा... मैं भी कम्मो मौसी के खाने की तरह, भड़भड़ी काका की दावत की तरह रोज़-रोज़ अच्छा-अच्छा खाना खाऊंगी... एक टेम नही, पूरे तीन टेम खाऊंगी और नानी मां की दवा तो रफ़ियत की दुकान से बिलकुल नही लूंगी... वह तो नक़ली दवा बेचता है, सभी कहते हैं... मैं तो अपनी नानी

२५ अगस्त १९७६, बहराइच (उ.प्र.);
एम. ए. (अर्थशास्त्र)

लेखन : *देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई कहानियां व लेख प्रकाशित.*

पुरस्कार : *जनवादी लेखक संघ, श्रीराममूर्ति स्मारक ट्रस्ट बरेली (उ.प्र.), दिल्ली प्रेस, स्पेनिन सृजन सम्मान (रांची) से पुरस्कृत.*

संप्रति : *स्वतंत्र लेखन एवं रंगकर्मी.*

मां को अच्छे से अच्छे डॉक्टर को दिखाऊंगी, फिर मेरी नानी मां पहले की तरह बिलकुल ठीक हो जायेगी... तब मैं उन्हें किसी के घर का चूल्हा-चौका नहीं करने दूंगी.

जैसे-जैसे रात सरकती जा रही थी चुन्नी की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी - 'तब मैं भी अपने दिल का सारा अरमान पूरा कर लूंगी, ख़ूब सुंदर-सुंदर-सी फ्राकें लूंगी, चप्पलें लूंगी, खिलौने लूंगी और पर्स तो बिलकुल कम्मो मौसी की तरह लूंगी. तब पूछूंगी बिंदिया, पपली, सफिया से कि अब बोलो कौन अमीर है और कौन ग़रीब ?' उसके नन्हें ज़ेहन में कई सवाल उफ़न रहे थे. अब उसकी समझ में आ गया कि कम्मो मौसी के पास क्यों इतना पैसा है और क्यों इतना बड़ा मकान है... 'मैं भी कम्मो मौसी की तरह मकान लूंगी,... लोग पूछेंगे तो भी मैं सड़क के उस पार के बारे में किसी को नहीं बताऊंगी. पपली, बिंदिया, सफिया को तो बिल्कुल नहीं. वे लोग जब भी कुछ खाती हैं तो मुझे ललचवा-ललचवा कर दिखाती हैं. अब मैं उन्हें भी वैसे ही ललचवाऊंगी...' इसी उधेड़-बुन में रात न जाने कब गुज़र गयी, उसे पता ही न चला.

अगली सुबह जब चुन्नी उठी तो वह ख़ुशी से फूली न समा रही थी. वह चहक-चहक कर इधर-उधर फुदक रही थी. उसकी इस ख़ुशी को नानी मां समझ नहीं पा रही थी और पूछ बैठी - 'क्यों री चुन्नी ! आज तू बड़ी ख़ुश दिख रही है ?'

वह झट से अपने मन की बात नानी मां से साफ़ छिपा गयी. और सोचने लगी - 'इस समय मैं कुछ नहीं कहूंगी... शाम को जब सड़क के उस पार से लौटूंगी तब नानी मां को सारी बात बताऊंगी.'

'अरी, चली गयी क्या रे.' नानी मां पुनः बोली.

'नहीं नानी मां, मैं तो यहीं हूं.'

'मैंने समझा कि तू चली गयी.'

चुन्नी नानी मां से बिना कुछ कहे ही झोपड़ी से बाहर निकल गयी. उसके गोरे-मासूम चेहरे पर मटमैली फ्राक ऐसे चमक रही थी जैसे अंधेरी रात में चांद चमकता हो. वह नंगे पांव शाम के इंतज़ार में इधर-उधर चहल-कदमी करती रही. इतना बड़ा दिन उसके काटे नहीं कट रहा था. वह बेचैन थी कि जल्दी जल्दी दिन ढल जाये.

अंत में शाम आ गयी और वह चल पड़ी सड़क के उस पार की तरफ़. तमाम लोगों को अपने से आगे पीछे चलता देख उसके मन में संशय पनपा, 'कहीं ये लोग भी सड़क के उस पार तो नहीं जा रहे हैं ?... पर इन्हें किसने बता दिया ?... कहीं ऐसा तो नहीं कि कम्मो मौसी ने चंदा के साथ-साथ इन सबको बता दिया हो ?... अगर ऐसा है, तो मैं इन सबसे पहले सड़क के उस पार पहुंच जाऊंगी.' चुन्नी ऐसे चल रही थी जैसे उसके पैरों में पर लग गये हों. जबकि पेट के नाम पर उसके हिस्से में एक ही रोटी आयी थी और दूसरी रोटी उसने नानी मां को दे दी थी.

यह तो भला हो उस भड़भड़ी काका का जिसने सुबह-सुबह आकर उसे दो रोटियां दे दी थी. वह चलती जा रही थी, चलती ही जा रही थी. न जाने वह कौन-सी ताक़त थी जो उसे खींचे लिये जा रही थी... सड़क के उस पार.

दोपहर को जब अशरफ़ी चाची ने उसे रोटी-चटनी खाने को कहा तो वह मुंह बना कर बोली, 'यह चटनी-रोटी तू ही खा चाची, मैं अब इसे नहीं खाने वाली !' वह ऊबड़-खाबड़ खड़ंजे को रौंदती हुई चली जा रही थी. उसकी नन्ही-नन्ही पुतलियों पर अच्छे-अच्छे पकवान एक के बाद एक आते-जा रहे थे. ख़ुशी के मारे उसका चेहरा चमक रहा था. वह रह-रह कर भागने लगती थी. रास्ते के एक-एक दृश्य उसकी चेतना में आते और जाते रहे. कभी किसी वृद्ध को सतुवा खाते देखा तो किसी नंगे बच्चे को रोटी खाते, तो किसी को चटनी खाते.

वह इन सबसे ऐसे मुंह बनाती हुई चली जा रही थी जैसे उसने कोई दुर्गंधित चीज देखी हो. फिर आया वह पब्लिक स्कूल जहां पढ़ने को वह जाने कब से तरसती थी. पर आज उसकी कल्पना साकार होने वाली थी. वह पुनः सोच में डूब गयी, 'अब मैं भी बिंदिया, पपली, सफिया की तरह इसी स्कूल में पढ़ूंगी. और ख़ूब अच्छी-अच्छी किताबें लेकर आऊंगी, तब पूछूंगी उनसे

कि अब बताओ किसकी किताबें सबसे सुंदर हैं ?'

कुछ ही पलों में वह सड़क पर आ गयी, जिसका उसे बड़ी बेसब्री से इंतज़ार था. उसके लिए सड़क जैसे सड़क न होकर कोई ख़ज़ाना हो. उसके चेहरे की रंगत और भी बढ़ गयी थी.

चुन्नी ने खड़े होकर सड़क के उस पार देखा - मेकअप से लिपी-पुती कई औरतें व लड़कियां अपने इशारों से लोगों को रिझा रही थीं. चुन्नी ने झट से सिर के बालों को हाथ से ठीक किया और जाकर सबसे किनारे खड़ी हो गयी, और उन्हीं की भांति देख देख कर हू-ब-हू उनकी नक़ल उतारने लगी.

सब लोग अपने-अपने में मस्त थे. चुन्नी और उसकी उंमगों से बेख़बर थे. बाईक और कारें आ जा रही थीं. जैसे ही कोई बाईक या कार वहां आकर रुकती लड़कियां और औरतें उस पर ऐसे झपटतीं, जैसे कोई मेढ़क केचुए पर झपटता है.

कार और बाईक वाले उन सबको क़साई की नज़रों से तौलते और मामला तय होते ही उन्हें अपने साथ ले जाते.

शाम का धुंधलका घिरने लगा था और अंधेरा उभरने. मगर चुन्नी तो बेख़बर सी उन सबके साथ-साथ कभी कार की ओर तो कभी बाईक की तरफ़ आ-जा रही थी. वह यह भूल गयी थी कि घर में कोई उसका इंतज़ार कर रहा है.

तभी एक वृद्ध वहां आया और स्नेहपूर्वक पूछ बैठा - 'ऐ लड़की, क्या नाम है तुम्हारा ?'

'मेरा ! चुन्नी.' वह खिलखिलाई !

'बहुत ख़ूबसूरत नाम है.'

ख़ूबसूरत सुनते ही चुन्नी मन ही मन ख़ुश हो उठी. और सवाल कर बैठी - 'तो क्या पैसा मिलेगा ?'

'ज़रूर मिलेगा, अगर तुम मेरे साथ चली तो ख़ूब पैसा मिलेगा...'

'सच ! ख़ूब पैसा मिलेगा ?' उसने दुबारा पूछा !

'हां ! ख़ूब पैसा मिलेगा.'

'लंबे बाबा ! तुम कितने अच्छे हो.' कहती हुई चुन्नी उस वृद्ध के साथ चल पड़ी. और मन ही मन बुदबुदाई - 'पर पपली, बिंदिया, सफिया तो सबकी सब गंदी हैं, वे मुझे कुछ भी नहीं देतीं, उल्टे हर टेम मुझे चिढ़ाती रहती हैं.'

इसी बीच एक महिला तेज़ी से आकर उस वृद्ध पर झपटी- 'तुम्हें शर्म नहीं आती लाला, अपनी नतनी की उमर की लड़की को फुसलाते हुए... छोड़ो इसे...' महिला ने तेज़ी से वृद्ध का हाथ झटकते हुए चुन्नी को अपनी ओर घसीट लिया.

'तू कौन होती है मुझे रोकने वाली... मैं किसी को भी लेकर जाऊं, तुझसे मतलब... बड़ी आयी है सती सावित्री बन के... चल हट रंडी.' वृद्ध का स्वर क्रोध से भरा था.

'छोड़ो मुझे, मैं बाबा के साथ जाऊंगी...' चुन्नी हाथ छुड़ाती हुई बोली.

महिला ने जैसे चुन्नी की बात सुनी ही न हो और तैश में आकर वृद्ध पर बरस पड़ी - 'हां ! मैं रंडी हूं, पेशा करती हूं, लेकिन तेरी तरह नहीं जो दिन के उजाले में महात्मा बनता फिरे और अंधेरा होते ही ये रूप....'

'नहीं! मैं जाऊंगी...' चुन्नी उसकी बातों का मतलब न समझकर पैर पटकती हुई अपनी जिद पर अड़ी रही.

'छोड़, इस लड़की को.' वृद्ध ने आंखें तरेरी.

'मैं बाबा के साथ जाऊंगी, छोड़ो मुझे...' वह सिसक पड़ी.

'चुप करती है कि लगाऊं दो-तीन लाफा.' महिला ने हाथ उठाया.

'छोड़ो इसे.' वृद्ध ने आगे बढ़ कर कहा.

'ख़बरदार लाला ! अगर तुमने एक क़दम भी आगे बढ़ाया तो मुझसे बुरा कोई नही होगा, भलाई चाहता है तो भाग जा यहां से.' महिला के एक-एक शब्द अंगारों की भांति दहक उठे.

क्रोध इतना तीव्र था कि वृद्ध उस महिला के सामने टिक न सका और गली की ओर मुड़ गया.

'छोड़ो मुझे... छोड़ो... मैं बाबा के साथ जाऊंगी, वे मुझे ख़ूब सारा पैसा देंगे... '

महिला उसे घसीटती हुई लेकर चल पड़ी.

'छोड़ो, मुझे बाबा के पास जाना है.'

'नहीं ! तुम झूठ बोलती हो, मुझसे जलती हो.... देखो अगर तुम मुझे छोड़ दोगी न तो मैं तुम्हें ख़ूब पैसा दूंगी !'

'समझती क्यों नहीं मेरी बच्ची... ये जगह भले जनों की नही.'

'तब किसकी है ?' चुन्नी ने आंसू पोंछते हुए पूछा !

महिला उसके प्रश्न से हतप्रभ रह गयी. और कुछ पलों के पश्चात बोल पड़ी - 'मुझ जैसी अभागिनों के लिए....'

'नहीं-नहीं ! तुम झूठ बोलती हो, कम्मो मौसी तो कहती थी कि यहां ख़ूबसूरत लोगों को ख़ूब पैसा मिलता है...'

'झूठ बोलती है तुम्हारी कम्मो मौसी, यहां बच्चों को कोई पैसा-वैसा नही मिलता.'

'मैं कुछ नही जानती, मुझे पैसा चाहिए...'

'समझती क्यों नहीं मेरी बच्ची, सड़क के उस पार की जगह, जगह नहीं श्मशान है हम जैसी औरतों के लिए, जहां हमारी इच्छाएं, ख़ुशियां दफनायी और बेची जाती हैं... और तुम उस श्मशान में जाओगी ?... उस श्मशान में...' महिला की बातों का उस पर कोई प्रभाव न पड़ा. वह तो सिर्फ़ एक ही रट लगाये थी - 'अगर मैं सड़क के उस पार न गयी तो मेरी नानी मां मर जायेगी... मर जायेगी...' वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी.

चुन्नी के एक-एक वाक्य कांच के टुकड़े की भांति महिला

के कानों में जा चुभे.

वह हालात के हाथों मजबूर थी, विवश थी, उसके पास इतने पैसे भी नहीं थे कि वह चुन्नी की मदद कर सके. क्या करती, परिस्थितियां ही ऐसी थी, बीमार पति व बच्चे के कारण ही तो उसे सड़क का मुंह देखना पड़ा था

'छोड़ो मुझे, मैं तुम्हारे साथ नहीं... बाबा के पास जाऊंगी..'

महिला को लगा जैसे उसकी बच्ची उसके सामने खड़ी ज़िद कर रही हो.

वह फुफ्कार पड़ी - 'बोल किधर जाना है.'

'मैं घर नहीं जाऊंगी.'

'नहीं जायेगी ?'

'नहीं जाऊंगी.'

तड़ाक-तड़ाक. दो तमाचे महिला ने उसके चेहरे पर उतार दिये.

तमाचा पड़ते ही चुन्नी संभल गयी और सिसकती हुई घर की ओर उस महिला के साथ चल पड़ी. चांद के निकलते ही अंधेरा मद्धिम पड़ने लगा. चुन्नी के सारे सपने दफ़न हो गये थे. हताश -उदास, बेमन-सी वह पैर घसीटती जा रही थी. उसने सहमे-सहमे पब्लिक स्कूल की तरफ़ देखा. जैसे वह स्कूल उसे मुंह चिढ़ा कर कह रहा हो- 'बड़ी आयी थी यहां पढ़ने, चल फूट यहां से...'

चुन्नी को लगा जैसे किसी ने उसके मुंह पर थूक दिया हो. आंखें छलछला आयी थीं. उदासी ठीक वैसे ही थी जैसे किसी को ख़ज़ाना मिलने से पूर्व ही उससे छीन लिया गया हो. पपली, सफ़िया, बिंदिया के बिंब उसकी धुंधली आंखों पर उतरने लगे. जैसे वह सब छेड़-छेड़ कर पूछ रही हों - 'कहां है तुम्हारी फ्राकें ?'

'कहां गये तुम्हारे वे खिलौने ?'

'कहां गयी तुम्हारी वो चप्पलें ?'

'और किताबें कहां हैं... बोलो-बोलो ?'

'बड़ी आयी थी हम सबकी बराबरी करने... ही-ही-ही.'

चुन्नी को लगा जैसे वह अभी चीख पड़ेगी. सोचते-सोचते उसकी आंखों की कोरों से कई बूंदें ढुलक आयी थीं.

अनायास उसकी निगाहें रफ़ियत की बंद दुकान पर जा फिसलीं.

उसे महसूस हुआ मानो दुकान भी कुछ कह रही हो- 'कहां गये तुम्हारे वो पैसे ? कहां गयी तुम्हारी वह सड़क ? जिसके बलबूते पर तू इतना चहक रही थी... निकल गयी सारी हेकड़ी... ही-ही-ही-ही.'

चुन्नी ने बायीं तरफ़ मुड़ते ही देखा एक व्यक्ति नोट गिनता हुआ चला रहा था. वह एक पल गंवाये बिना ही उस महिला से हाथ छुड़ाती हुई उस व्यक्ति की ओर भागी. तब तक भागती रही जब तक उस व्यक्ति के पास पहुंच न गयी. उसने झट से आगे बढ़ कर फ्राक को गले के नीचे से चीर दिया - 'देखो मैं ख़ूबसूरत हूं, क्या तुम मुझे पैसा दोगे ?' वह मझले क़द का व्यक्ति अवाक, निरुत्तर-सा खड़ा उस लड़की को, तो कभी नोटों को देखता रहा और देखता रहा.......

मो. किला, नज़दीक महाजनी स्कूल,
बहराइच (उ. प्र.) २७१८०१

लघुकथा

असलियत

नरेंद्र कौर छाबड़ा

सबेरे के चाय नाश्ते से निबटकर आदतन टी.वी. चालू किया. मुख्य समाचार सुर्खियों में आ रहा था - विरोधी पार्टी प्रमुख के दिवंगत पिता की मूर्ति पर किसी ने कीचड़ मैला आदि लगाकर उसका अपमान किया था जिससे पार्टी में काफी रोष था. विरोध, निंदा प्रगट किये जा रहे थे. दोपहर होते-होते जगह जगह तोड़-फोड़, आगजनी की घटनाएं होने लगीं. बाज़ार, दुकानें पूरी तरह से बंद करा दिये गये. सरकारी वाहन, बसें जहां कहीं दिखी उग्र भीड़ ने उन्हें रोक कर पथराव किया और आग लगा दी.

शाम तक काफी तोड़-फोड़, उपद्रव होते रहे. लाखों, करोड़ों का नुकसान हो चुका था. मध्यरात्रि में कुछ उपद्रवियों ने जाति विशेष के लोगों की दुकानों में आग लगा दी फलस्वरूप दंगे शुरू हो गये. अगले दिन स्थिति पर नियंत्रण पाने के उद्देश्य से क़र्फ्यू लगा दिया गया. रात को विरोधी प्रमुख के घर अत्यावश्यक मीटिंग बुलाई गयी जिसमें कुछ प्रमुख मुद्दों पर चर्चा की गयी. उसके बाद पीने पिलाने का दौर आरंभ हुआ. कहा जाता है अधिक पीने के बाद आदमी के मुंह से सच्चाई बाहर आने लगती है. किसी कार्यकर्ता ने पूछ लिया - 'नेताजी, अभी तक यह बात समझ नहीं आयी मूर्ति की अवमानना किसने की ? किसकी हिम्मत हुई यह करने की ?'

नेताजी रहस्य से मुस्कराते बोले - 'किसकी हिम्मत है यह करने की ? यह तो हमारे ही इशारे पर हुआ है.'

'लेकिन अपने दिवंगत पिता की मूर्ति का अपमान आख़िर आपने क्यों करवाया ?'

'तुम राजनीति जानते ही नहीं. चुनाव का समय आ रहा है सत्तारूढ़ पार्टी के ख़िलाफ जनता को जागरूक करना है, सरकार की नाकामियों को सिद्ध करना है... हम हाथ पर हाथ धरे कब तक बैठे रहेंगे ? दूसरी बात दस साल पुरानी मूर्ति पर कुछ देर के लिए कीचड़ मैला लगाने से क्या फ़र्क पड़ता है ? आख़िर तो वह निर्जीव धातु की मूर्ति है. वैसे भी सालभर उस पर धूल, मिट्टी, पक्षियों की बीट आदि गिरते ही रहते हैं. बरसी के दिन ही सफ़ाई करायी जाती है. हमारी इस चाल ने सत्तारूढ़ पार्टी की नींद हराम कर दी है. अब हम आराम से सोयेंगे और अगले चुनाव की रूपरेखा तैयार करेंगे....'

कहते हुए नेताजी नींद की गोद में लुढ़क गये.

१८४ सिंधी कालोनी, जालना रोड,
औरंगाबाद - ४३१००५

कहानी

जंगल

आख़िर करे भी तो क्या करे बिसेस्सर. किसे सुनाये अपने दिल का दुखड़ा. अपनी पत्नी को ? अपने बच्चों को ? अपने मित्रों को या फिर पड़ोसियों को ? सब के सब कन्नी काट जाते हैं. सबके पास अपने-अपने बहाने हैं.

आख़िर वह चाहता क्या है ? यह किसी को जानने की आवश्यकता नहीं है. वह क्यों, रात जागकर, गुज़ार देता है ? उसके कलेजे में छायी दुःख की बदली क्यों गरजती-बरसती रहती है ? यह जानने के लिए किसी के पास फ़ुर्सत हो तब न ! कितना व्यस्त हो गया है आज का आदमी. उसके पास यदि किसी चीज़ की कमी है तो वह समय है. कितना टोटा हो गया है समय का आदमी के पास. सामने से आता दोस्त भी, उसे देख रास्ता बदल लेता है. ऐसे कठिन समय में, आख़िर करे भी तो क्या करे बिसेस्सर.

एक दिन उसकी पत्नी ने उसकी आंखों में आंखें डालते हुए तथा अपनी नाज़ुक व नर्म अंगुलियों से बालों को सहलाते हुए, उसकी पीड़ा को जानने की कोशिश की थी. बड़ा अच्छा लगा था उसे उस वक्त. 'कोई तो है उसके दिल का हाल पूछने वाला,' सोचते हुए वह भावुक हो उठा था. और उसके सीने से चिपट गया था. कलेजे में वर्षों से जमे हिमखंड पिघल-पिघलकर बहने लगे थे.

चालीस-बयालीस साल का वह अधेड़, एकदम बच्चा बन गया था. अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए वह अपने अतीत की तीस बरस की घाटी में उतरने लगा था. और उसके चारों ओर स्मृतियों का बीहड़-जंगल उग आया था.

सारी बातों को गंभीरता से सुनने के बाद, उसकी पत्नी ने अफ़सोस जताते हुए कहा था, "तीस बरस का समय कम नहीं होता. यदि वे जीवित होते तो तब तक लौट आते अथवा चिट्ठी-पत्री से अपने होने का सबूत देते. आदमी इतना पत्थर दिल भी नहीं होता कि उसे अपनी मातृ-भूमि की याद ही नं आये. मेरी मानो तो आप बच्चों को साथ लेकर, गयाजी हो आओ. उनका पिंड-दान करवा आओ, ताकि उनकी आत्मा को शांति मिल जाये और आपकी आत्मा को भी. मृत-आत्माएं, आदमी का पीछा तब तक नहीं छोड़तीं, जब तक विधि-विधान से क्रिया-कर्म न करा दिया जाये."

पत्नी की सपाट बयानी पर उसे बेहद क्रोध हो आया था. सुनते ही वह उबलने लगा था. उसका चेहरा तमतमाने लगा था. पैर पटकते हुए वह यह कहकर उठ खड़ा हुआ था, "तुम भी औरों की तरह सोचती हो. मेरा भाई ज़िंदा है. देखना.... एक दिन वह लौट आयेगा."

टोह लेने की मंशा से एक दिन उसने बेटों को बुलाया. पास बिठया और पूछा कि वे क्या सोचते हैं. बेटे जानते थे कि पिता अपने भाई के बारे में वह सब कुछ सुनना नहीं चाहेंगे जो वे कहना चाहते हैं. जवाब तो आखिर उन्हें देना ही था. शब्दों को तौलते हुए बड़े बेटे ने कहा, "पिताजी, अतीत को अतीत ही रहने दें. इसमे ही भलाई है. आप वर्तमान को जियें. जो पीछे छूट गया, सो छूट गया. हम सबके बारे मे सोचिए. हम आपका वर्तमान हैं और भविष्य भी." ऐसा कहते हुए उसने अपना नन्हा सा बेटा उसकी गोद में डाल दिया था.

गोवर्धन यादव

शब्दों की जादूगरी वह समझ रहा था. वह यह भी समझ रहा था कि उसका मंतव्य क्या है.

निराशा भरी व मिचमिचाती आंखो से उसने आसमान को देखा. हमेशा की तरह निर्मल-शांत और अपना नीलापन लिये हुए आसमान एकाएक मटमैला हो गया था. हवा का चलना एकदम बंद हो गया था और आसमान में उड़ती चीलें, गिद्ध अधर में लटक गये थे, मानो उन्हें किसी ने कीलों से जड़ दिया हो.

निराशा और हताशा के बीच के पतले से सूराख़ के बीच गुज़रते हुए उसने एक ऐसे व्यक्ति को खोज निकाला जो न तो भाग सकता था. जिसे, न तो भूख सताती थी, न ही प्यास और न ही वह पेशाब करने का बहाना बताकर रफ़ू-चक्कर ही हो सकता था.

वह एक आईना खरीद लाया था और उसे अपने शयन कक्ष में लगा दिया था. आईने के सामने बैठकर वह अपने मन की पीड़ा उजागर कर देता था. जानता था वह, वह उसका अक्स है. उसकी प्रतिच्छाया है. लेकिन कोई तो है सुनने वाला. अपनी बात, पूरी तरह उगल देने के बाद वह एकदम ख़ाली हो जाता. ऐसा करते हुए वह प्रसन्नता से भरने लगता था.

उसे अब भी याद है. भइया रामेश्वर के इस तरह चले जाने के बाद, उसके माता-पिता पर क्या गुज़री थी. मां तो जैसे विक्षिप्त सी हो गयी थी. वह बोलती बतियाती नहीं थी. वह अक्सर कहती, "मेरे राम-लक्ष्मण की जोड़ी बिछड़ गयी." पिता कहते "मेरी अयोध्या राम के बग़ैर सूनी हो गयी." बावजूद इसके वे

मां को समझाने का प्रयास करते. मा कहती, "कैसे भूल जाऊं... कैसे कह दूं कि वह मेरे शरीर का हिस्सा नहीं रहा. कैसे भूल जाऊं कि वह मेरी कोख में नौ माह नहीं रहा."

कुछ दिनों बाद पिता ने अपने आपको एक कमरे मे क़ैद कर लिया था. वियोग के विषधर की फुंसकार से उनका गोरा बदन एकदम काला पड़ गया था.

पिता अक्सर यह कहते सुने गये, "शरीर एक बार बिगड़ जाये तो इसे सुधारा जा सकता है. एक से बढ़कर एक डॉक्टर हैं आज देश में. मन, अगर एक बार दबक खा जाये, तो उसे सुधारना मुश्किल. कहते हैं कि इसकी दवा हकीम लुक़मान के पास भी नहीं थी." सबको सीख देने वाले पिता का मन भी दबका खा गया था

बिसेस्सर जब भी गहरी नींद में होता है. वह तीस साल पुरानी घटना, सपना बनकर आंखो के सामने घूमने लगती है. ठीक सिनेमा की रील की तरह. एक-एक पल. एक-एक क्षण जीवत हो उठते हैं. जब वह अचेतन अवस्था मे रहता है उसे कुछ भी याद नहीं रहता. यदि नींद खुल गयी, तो वह जागती आंखो से वह सब देखता रहता है. क्योकि यही तो वे क्षण होते हैं, जब वह अपने भाई की छवि देख पाता है.

उसके सपने में उभरता है एक गांव. गांव के किनारे बहता चमार नाला. इसी चमार नाले मे उतरकर उसके पूर्वज मरे जानवरों का चमड़ा उतारा करते थे. उसके परदादा एक कुशल चर्मकार थे. उन्होंने उस समय के जमींदार को एक ऐसी अनोखी जूती बनाकर नजराने मे पेश की थी जिसे समय पड़ने पर काग़ज़ की तरह मोड़कर जेब मे रखा जा सकता था. उसकी कलात्मक नक़्क़ाशी और बेलबूटे बनाने में पूरे छः माह का समय लगा था.

ज़मीदार ने ख़ुश होते हुए उन्हें उस नाले के पास की ज़मीन बतौर पुरस्कार मे देते हुए कहा था कि एक अभिशप्त और उजाड़ भूमि को एक कलाकार ही संवार सकता है. उसके परदादा ने, न सिर्फ़ कड़ी मेहनत की बल्कि अपने कठिन परिश्रम से उसे खेती लायक़ भी बना डाला. उस समय से वह भूमि उनके परिवार के अधिकार मे रही.

देश आज़ाद हुआ. गांव, एक औद्योगिक नगर के रूप में विकसित होने लगा. ज़मीन की क़ीमतें आसमान छूने लगी. तब ज़मीदार के वंशज अपने प्रभाव एवं ताक़त के बल पर उस ज़मीन को हथियाने के लिए प्रपंच रचने लगे.

गर्मी के दिन थे. कटाई के बाद गेहूं खलिहानों मे रख दिया था. खेत ख़ाली पड़े थे. बच्चे गिल्ली-डंडा खेल रहे थे. उचित अवसर देख लठैतों ने उसके पिता को घेर लिया और धमकी दी कि वह तत्काल गांव छोड़कर भाग जाये अन्यथा जान की ख़ैरियत नहीं. जब पिता नहीं माने तो खेत खलियानों मे आग लगा दी गयी. लाठियां बरसायी जाने लगी. आग की विकराल लपटों व चीख

गोवर्धन यादव

१७ जुलाई १९४४, मुलताई (बैतूल);
बी. ए.

लेखन : *'रूपांबरा', 'कथाबिंब', 'कृति परिचय', 'अक्षरशिल्पी', 'मनोरम झंकृति', 'दुनिया', 'पूर्वा', 'पंजाबी संस्कृति', 'तूलिका', 'पनघट', 'आलाप', 'डाक पत्रिका' एवं प्रदेश के चर्चित समाचार-पत्रों में कहानियां प्रकाशित. 'महुआ के वृक्ष' कहानी संग्रह प्रकाशित, दूसरा कहानी संग्रह शीघ्र प्रकाश्य एंव एक अनाम उपन्यास पर कार्य जारी.*

सम्मान / पुरस्कार : *म.प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन का सारस्वत सम्मान, 'जूती' कहानी पुरस्कृत.*

संप्रति : *सेवानिवृत्त पोस्ट मास्टर, अब स्वतंत्र लेखन.*

पुकार की आवाज़े सबसे पहले बिसेस्सर ने ही सुनी. वह चिल्ला उठा, "भइया आग ! किसी ने हमारे खेतों में आग लगा दी है."

रामेस्सर उससे मात्र चार साल बड़ा था. अल्पवय के बावजूद वह क़द्दावर होने के साथ ही बलिष्ठ भी था. उसकी चाल मे चीते की सी उछाल थी. पल भर में वह वहां जा पहुंचा था. उसने देखा कि ज़मीदार का पोता उसके पिता को जूतो-चप्पलों से पीट रहा है और भद्दी-भद्दी गालियां भी दे रहा है. देखते ही उसका ख़ून खौल उठा था. उसने एक बड़ा सा पत्थर उठाया और निशाना साधकर पोते की ओर उछाल दिया. पत्थर निशाने पर पड़ा था और वह ज़मीन पर मछलियो की तरह तड़प रहा था. शायद उसकी खोपड़ी चटक गयी थी. फिर उसने एक लठैत से लाठी छीनकर वार करना शुरू किया. कुछ लठैत भाग खड़े हुए. कुछ ज़मीन की धूल चाटते, औंधे पड़े थे. ज़मीन पर पड़े ज़मींदार के पोते को उसने तीन-चार लाते जमायीं. इस तरह उसने पिता के अपमान का बदला ले लिया था. इसी बीच पुलिस भी आ पहुंची थी. इस बार भी बिसेस्सर चिल्लाया था, "भइया पुलिस आ गयी है." इतना सुनते ही वह भाग खड़ा हुआ था. बिसेस्सर की नज़रें अपने भाई का पीछा तब तक करती रही थी, जब तक वह आंखो से ओझल नहीं हो गया था.

अधूरी शब्द यात्राएं

✍ सुशील कुमार

सैकड़ों चेहरे देखता हूं, सड़कों पर आते-जाते
पर देख नहीं पाता कभी चेहरे के पीछे लगा चेहरा,
देखता हूं रंग-बिरंगे कपड़े और सजधज,
ज़माने के साथ करवट लेते फैशन और रिवाज़.
पर देख नहीं पाता इनमें छिपी दुष्टताएं,
प्रेम की वासनाएं, लालच और रोष.
टुकड़े-टुकड़े में देखता हूं जीवन के सच-झूठ, सपने और भविष्य,
मगर एकबारगी पूरे नहीं देख पाता कभी इन्हें.
जिस ज़मीन पर खड़ा होता हूं,
नहीं दिखाई देती है वहां से पूरी दुनियां.
आंखों में पड़ते छाले भी, कभी आखें नहीं देख पातीं,
न मन में चुपके-चुपके जड़ें जमा रहे
निकम्मे देवताओं की काली करतूतें ही दिखती हैं,
जितनी दिखती हैं उनमें
नायाब रह जाते हैं अनुभव के अनगिन तारे,
स्पंदन, स्वप्न, सूत्र और आकांक्षाएं
अधूरे रह जाते हैं,
आंख बनते हाथ,
इच्छाएं और
कविताओं में पूरी होती शब्द यात्राएं.

हंस निवास, काली मंडा, हरना कुंडी रोड,
नोनी हथवारी, दुमका (झारखंड) - ८१४१०१.

स्मृति के बतौर केवल वह एक घटना है, जिसमें उसने अंतिम बार अपने भाई को देखा था. वह बार-बार इस घटना को अपनी स्मृति में दोहराता रहता है, ताकि वह अपने भाई की उस छवि को देखता रहे.

वह मुकदमा जीत चुका था. उस क़ीमती ज़मीन की वजह से ही उसके पास आज आलीशान बंगले हैं, मोटर गाड़ियां हैं, बैंक-बैलेंस है, और नौकर-चाकरों की भीड़ भी. सब कुछ होते हुए भी वह अपने आपको अनाथ ही कहता है क्योंकि इस प्रकरण को जीतने से पहिले उसने अपने माता-पिता और भाई को खो दिया था. उसे अब भी विश्वास है कि उसका भाई, एक न एक दिन वापिस लौट आयेगा.

रोज़ की तरह उसने एक सपना देखा. वह भयंकर और अज़ीब सपना था वह. वह उठ बैठा और बग़ीचे में चला आया था भोर की उजास अभी फैलनी बाक़ी थी. तभी उसे लगा कि कोई उसकी ओर आ रहा है. कौन है वह ? यह स्पष्ट तो देख नहीं पाया था. आवाज़ नज़दीक आती जा रही थी. वह पास आ गया था. और ऊंचे स्वर में उसने उसे पुकारा - 'बिसेस्सर.... बिसेस्सर मेरे भाई.... देख मैं लौट आया हूं.' आवाज़ रामेस्सर की ही थी. वह आवाज़ को ठीक से पहचान सकता था.

एक अस्पष्ट बिंब, स्पष्ट होता जा रहा था. वह लौट आया था. ख़ून ने ख़ून को पहचान लिया था. दोनों भाई एक दूसरे में लिपटे रहे. आंसुओं की धारा बहती रही और मौन संवाद चलता रहा. आस्थाओ का मृतप्राय जंगल फिर लहलहाने लगा था, तथा मधुमास की मादक गंध फैलने लगी थी. चौदह साल से कुछ ज़्यादा -- दो गुणा वनवास काटकर राम, अपनी आयोध्या में लौट आये थे. परिवार का हर छोटा-बड़ा सदस्य अपने दादाजी के चरणों में नतमस्तक था.

देर रात तक बिसेस्सर अपनी तीस साला कहानी सुनाता रहा था. ज़मीन के प्रकरण से लेकर, अपने मां-बाप का करुण अंत और बाद की बातें उसने एक सांस में कह सुनायी थीं.

अब रामेस्सर की बारी थी. घर छोड़ने से लेकर घर बसाने तक की दास्तान उसने कह सुनायी. सारा कुनबा अपने दादाजी की बातों को परी-कथा की कहानी की भांति सुन रहा था.

राम-कथा सुनने के बाद बिसेस्सर ने बड़े ही विनीत भाव से कहा कि वे सीता जैसी भाभी और बच्चों को यहां ले आयें. बातों को स्पष्ट करते हुए उसने यह भी कहा कि उसका आधा हिस्सा आज भी अमानत के तौर पर मेरे पास सुरक्षित है, वह भी आप ले लीजिए.

सारी रात दोनों भाई बातें करते रहे और रात मोमबत्ती की तरह सुलगती पिघलती रही.

आठ दस दिन कैसे बीत गये, पता ही नहीं चल पाया.

रामेस्सर अब लौट जाना चाहता था. उसे अपनी बीबी-बच्चों की याद सताने लगी थी. उतावली में वह बिना बतलाये ही चला आया था. वह हर हाल में लौट जाना चाहता था.

बिसेस्सर ज़िद लगाये बैठा था कि वह अब किसी भी क़ीमत पर उसे जाने नही देगा. वह कोर्ट से स्टैंप-पेपर भी ख़रीद लाया था और यह चाहता था कि जितनी जल्दी हो सके, वह अपने भाई का आधा हिस्सा, उसे सौंपकर, शेष जीवन निश्चिंतता से काट देगा.

रात का सन्नाटा पसरा पड़ा था. रामेस्सर गहरी नींद में सोया ख़र्राटे भर रहा था. बिसेस्सर के बड़े बेटे ने, बड़ी सावधानी के साथ, दादू के बगल में सोये अपने पिता को जगाया और उस कमरे में ले आया, जहां पहले से ही उसकी पत्नी और परिवार के शेष जन बैठे हुए थे.

बिसेस्सर का दिमाग़ ठनका था, इस हरकत पर. शंका-कुशंका की घनी बेलें उसके शरीर में तेज़ी से लिपटने लगी थी और चिंता की मकड़ी उसके चेहरे पर जाल बुनने लगी थी.

एक कुर्सी में धंसते हुए उसने धड़कते दिल से पूछा, "इतनी रात गये, इस तरह बुलाने का मतलब ?" सभी के म्लान चेहरों पर नज़रें घुमाते हुए उसने पूछा था.

बड़े बेटे ने पहल करते हुए कहा, "पिताजी... ये क्या पागलपन मचा रखा है आपने ? लाखों-करोड़ों की जायदाद मुफ़्त में ही बांट देंगे क्या ? इस ज़मीन को लेकर कितने कष्ट सहे हैं आपने. हफ़्तों भुखमरी की मार झेली थी आपने. इन्होंने आख़िर किया ही क्या था ? और आप, बड़ी आसानी से, इतनी बड़ी जायदाद तश्तरी में रखकर ऐसे भेंट में दे रहे हैं, जैसे वह फूल-पत्ती हो. इस धोखेबाज़ भाई ने किया ही क्या है आपके वास्ते? गुपचुप अपनी गृहस्थी बसा ली और पलटकर भी नहीं देखा कि आप पर क्या बीत रही है. हम चुप नहीं बैठेंगे और ऐसा होने भी नहीं देंगे, जैसा कि आप सोच रहे हैं." बोलते समय उसके चेहरे पर तनाव की घनी परछाइयां देखी जा सकती थीं. वह तैश में था. उसकी आवाज़ में तलख़ी थी. बोलते समय उसका शरीर आवेश में कांप रहा था.

बातें सुनकर बिसेस्सर को लगा कि असंख्य बर्र मक्खियों ने उस पर अचानक हमला बोल दिया है और सारे शरीर पर दंशों के निशान उभर आये हैं. उसे तो ऐसा भी लगा कि उसके कपड़े जबरिया उतार दिये गये हैं और उसे तपती रेत के उपर लिटा दिया गया है. चील और गिद्ध उसके शरीर से मांस-पिंड नोंच कर खा रहे हैं.

उसका दम घुटने लगा था. उस कमरे में वह और ज़्यादा देर तक, बैठ नहीं रह सकता था. वह तेज़ी के साथ उठ खड़ा हुआ और उस कमरे की तरफ़ भाग चला था, जहां उसका बड़ा भाई सो रहा था.

वह हैरान व हतप्रभ था, यह देखकर कि उसका बड़ा भाई उस कमरे में नहीं था. कहां चला गया होगा वह ? ढेरों सारे प्रश्न उसके दिमाग़ को मथने लगे थे. इस कमरे से उस कमरे और उस कमरे से दूसरे कमरों को, वह अब तक छान चुका था. कहीं भी वह नहीं मिला. उसका दिल तेज़ी के साथ धड़कने लगा था. तीस बरस की कठिन तपस्या के बाद उसे उसका भाई मिला था और कितनी आसानी से वह फिर ग़ायब हो गया है. पागलों की तरह चीख़ते हुए, "भैया तुम कहां हो, भैया तुम कहां हो ?" कहता हुए वह बाहर निकल आया था. बाहर घना अंधकार फैला हुआ था और सांय-सांय की आवाज़ें आ रही थीं. रात्रि अपने अंतिम पहर की बची-खुची सांसें ले रही थी. गहन-दुर्गम अंधकार की परतों से टकराकर उसकी आवाज़ वापस लौट आयी थी.

सपना टूटा. आस भी टूटी. धीरे धीरे अब वह हक़ीक़त की दुनियां में लौटने लगा था.

थके हारे भारी क़दमों से वह वापिस लौट रहा था.... बुदबुदाते हुए वह इतना ही कह पाया था. राम... इस स्वर्ण नगरी में तुम रह भी कैसे सकते थे.

स्मृतियों का बीहड़-जंगल उसके चारों ओर फैलने लगा था और वह उसमें समा गया था.

१०३, कावेरी नगर, छिंदवाड़ा (म. प्र.) - ४८०००१

लघुकथा

फूल हर सिंगार के

डॉ. सुरेंद्र गुप्त

दोनों भाइयों के बीच जब बहुत ही ख़टास आ गयी और दोनों परिवारों का इकट्ठे रहना असंभव हो गया तो एक दिन आया, आंगन में दीवारें खिंच गयीं. दीवारें क्या खिंची, पूरे दिल ही बंट गये. पिता जी तो बहुत पहले स्वर्ग सिधार गये थे, रह गयी मां. वह छोटे के साथ रहने लगी थी.

बड़े भाई ने बेटी की शादी तय की, किंतु छोटे को उसकी कतई भनक नहीं लगने दी. विवाह का दिन भी आया. पूरे मोहल्ले को निमंत्रण दिया गया, पर न तो छोटे को बुलाया और न ही मां को. बड़े भाई की निष्ठुरता और तिरस्कार के कारण मां तथा छोटे भाई का हृदय चिता पर रखे शव की तरह धू-धू करके जल रहा था.

जब बारात बिदा हो रही थी तो मां छोटे के साथ अपने आंगन में ख़ड़ी-ख़ड़ी पोती को विदा होते देख रही थी. उसका अंतर्मन बेहद उदास था और भीतर ही भीतर फूट-फूट कर रो रहा था. अचानक लड़की की निगाह चाचा के आंगन में घूमी तो उसे वहां दादी खड़ी नज़र आयी, साथ में ही चाचा तथा चाची भी. वह अपने को रोक नहीं पायी और बिजली की गति से दौड़ती हुई चाचा के आंगन में पहुंच गयी तथा वहां दादी के पैरों में झुक गयी. उस की आंखों से टप-टप गिरते आसुओं ने दादी के पैरों को तो भिगोया ही साथ में धरती मां के वक्ष-स्थल को भी तर कर दिया. दादी ने उसे उठा कर चूमते हुए गले से लगा लिया, तत्क्षण उसकी आंखों भी बरबस ही बह उठीं. जब वह पास में ही ख़ड़े चाचा तथा चाची के पैरों में भी झुकी तो उसे आशीर्वाद देते देते चाचा-चाची की आंखों से भी आंसू झर-झर बहने लगे, जो शायद दिल के किसी कोने में अटके पड़े थे.

तभी दादी एक झटके से भीतर गयी तथा अपने समय का भारी सा हार जो कभी का संभाल कर रखा था, ले कर आयी और बिटिया के गले में डाल दिया. चाचा भी कब पीछे रहने वाला था, भीतर गया और एक लिफ़ाफ़ा लाकर बिटिया के हाथ में पकड़ा दिया.

अपने आंगन से ही भाई, वहां का सभी दृश्य देख रहा था, वह भी अपने रोक नहीं पाया तथा खिंचा हुआ छोटे भाई के गले लिपट गया. सभी के मन में सूख़ गयी प्यार की गंगा फिरसे बहने लगी थी. बिटिया के गले में झूल रही जयमाला के फूलों से फूट रही सुगंधि ने पूरे आंगन को ख़ुशबू से भर दिया था. यही नहीं भोर के समय चंद्रमा की स्निग्ध रोशनी में, हरसिंगार के पेड़ से झर रहे फूल, आंगन में बिछ कर एक नयी मनमोहक महक को जन्म दे रहे थे.

आर. एन.-७, महेश नगर,
अंबाला छावनी - १३३ ००१.

आमने / सामने

अपने समय को लिखते हुए

गोवर्धन यादव

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रज़ाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी' और महावीर रवांल्टा से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है गोवर्धन यादव की आत्मरचना.)

प्रेम करने के लिए उम्र की सीमा नहीं होती. ठीक इसी तरह कविताएं-कहानियां लिखने के लिए भी उम्र का बंधन नहीं होता. टामस हार्डी आजीवन उपन्यास लिखते रहे. उन्होंने अस्सी वर्ष की उम्र में कविताएं लिखना शुरू किया था.

यदि मैंने तीन दशक से कुछ ज़्यादा समय तक कविताएं लिखने के बाद कहानियां लिखना शुरू किया, तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगता.

अपने जीवन के इकसठवें मोड़ पर, लेखनी के दरिया किनारे बैठकर, जब मैं हादसों को गिनता हूं तो बरबस ही मुझे मेरा अतीत याद हो आता है.

सत्तरह जुलाई सन् उन्नीस सौ चौबालिस को मेरा जन्म, पुण्य-सलिला मां ताप्ती के उद्गम स्थल मुलताई (बैतूल) में हुआ. शुरू से ही यह जगह धार्मिक-सांस्कृतिक एवं राजनैतिक चेतना की संगम-स्थली रही है.

मां भगवत भक्त थीं. वे बड़े ही अनन्य भाव से रामचरित मानस, सुखसागर, शिवपुराण जैसे धार्मिक ग्रंथों को बांचती थीं. यद्यपि पिताजी को पढ़ने का शौक़ कम अवश्य था, बावजूद इसके वे किताबें ज़रूर ख़रीदकर लाते थे. गीता प्रेस गोरखपुर की किताबें उन दिनों एक नये पैसे से अधिक मूल्य तक की आसानी से उपलब्ध हो जाया करती थीं. किताबें पढ़ने का शौक़ मुझे मेरे घर की पाठशाला में ही रहते हुए मिला था.

लगभग चौदह-पंद्रह वर्ष की उम्र से ही मैंने कविता लिखना शुरू कर दिया था. तब शायद मैं यह नहीं जान पाया था कि कविता आख़िर होती क्या है. बस, मन में जो भी अच्छे-अच्छे विचार उत्पन्न होते, मैं उन्हें जस का तस कागज़ पर उतार दिया करता था.

कक्षा नौवीं का विद्यार्थी था मैं उन दिनों. केदार नाथ हाईस्कूल जिसका संचालन नगरपालिका करती थी, सरकारी स्कूल में बदल गया था. श्री एस. वी. पौराणिक प्राचार्य होकर आये थे. आने के साथ ही उन्होंने स्कूल की सारी गतिविधियों का वर्गीकरण कर दिया था. प्रत्येक वर्ग का सचिव चुना हुआ विद्यार्थी होता. शिक्षक उपाध्यक्ष और वे स्वयं अध्यक्ष थे. मुझे साहित्य-सचिव चुना गया था. उस समय से ही एक हस्तलिखित स्मारिका निकाले जाने की शुरूआत हुई थी. अपनी सुंदर लिखावट और चित्रकारी की वजह से मैं एक अलग ही प्रभाव बनाये हुआ था.

चित्रकारी करने का शौक़ मुझे कक्षा चौथी से लगा था. सुंदरलाल देशमुख, शिक्षक के रूप में नये-नये आये थे. उनके आने के साथ ही स्कूल की दीवारें सुभाषितों व स्वनामधन्य महापुरुषों के उपदेशों से रंगी जाने लगी थीं. मुख्य सभागार में एक बड़ा सा आर्च था जिसमें प. जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी से चर्चा में निमग्न बनाये गये थे. मैं एक ओर तटस्थ भाव से खड़ा रहकर उन्हें चित्र बनाते देखता रहता था. कक्षा पांचवी में ड्राइंग एक स्वतंत्र विषय था. हमारे कक्षा शिक्षक श्री नाथूरामजी पवार चित्रकारी करना सिखाते थे.

साहित्य सचिव चुने जाने की पूर्व की घटना का यहां उल्लेख करना आवश्यक होगा. श्री एन. लाल जैन 'स्वदेशी' हमें संस्कृत पढ़ाया करते थे. वे एक अच्छे कवि भी थे. कॉपी की जांच के दौरान उन्हें पृष्ठ-भाग पर लिखी एक कविता नज़र आयी. उन्होंने उसे सिर्फ़ पढ़ा ही नहीं अपितु लगातार लिखते रहने के लिए भी प्रोत्साहित किया. इस तरह फिर कविता से मेरा नाता कभी नहीं टूटा. उल्टे कविता से मेरा रिश्ता साल दर साल गाढ़ा और दिनों दिन अधिक आत्मीय होता गया.

भारतीय अस्मिता के साहित्यकार कवींद्र रविंद्रनाथ ठाकुर को पढ़ते हुए एक सूत्र हाथ लगा. वे अपनी कविता के साथ चित्र बनाकर उसमें प्राकृतिक रंग भरा करते थे. मैं भी कविता के साथ

चित्र बनाता और उसमें रंग भरा करता था. उस समय में बनाई गयी डायरी आज भी मेरे पास एक बहुमूल्य धरोहर की तरह सुरक्षित है. जब भी मैं उसके पन्ने पलटता हूं तो दिव्य-स्मृतियां मानस पटल पर थिरकने लगती हैं.

मनुष्य का सब कुछ बदलता रहता है. उसी प्रकार कविता भी बदलती रहती है. केवल एक चीज़ नही बदलती और वह है उसकी भीतरी शक्ति - उसकी आत्मा - उसकी निजता - उसकी पहचान - उसका कवितापन - उसकी धड़कन.

उस काल-खंड में लिखी गयी कविताएं और बाद में लिखी गयी कविताओं में ज़मीन-आसमान सा अंतर अवश्य है, लेकिन उनकी भीतरी शक्ति और माधुर्य अब भी देखे जा सकते हैं. नागपुर नवभारत में जब पहली बार मेरी कविता छपी, वह दिन मेरे लिए एक अदभुत दिन था. प्रसन्नता से लकदक भरा. पैर तो जैसे ज़मीन पर ही नहीं पड़ रहे थे. दोस्तों से बधाइयां अलग मिल रही थीं. सबसे ज़्यादा प्रसन्नता मां को हुई थी उस दिन. वह ख़ुश थी. बेहद ख़ुश.

दो विषयों में विशेष दक्षता के साथ, मेट्रिक की परीक्षा, प्रथम श्रेणी में पास करने के बावजूद उतनी प्रसन्नता नहीं हुई थी. मैं आगे पढ़ना चाहता था लेकिन सीमित संसाधनों की वजह से वह संभव नही लग रहा था. हालांकि नागपुर मेरी ननिहाल थी. रहने की व्यवस्था तो हो सकती थी लेकिन अन्य ख़र्चों के लिए अतिरिक्त व्यवस्था जुटाना भी आवश्यक था. ख़ैर... मैंने धनवटे नेशनल कॉलेज में एडमिशन लिया और पार्ट-टाइम जॉब की तलाश करने लगा. जल्दी ही मुझे इसमें सफलता मिल गयी और इस तरह पढ़ाई आगे चल पड़ी.

बी. ए. पास कर लेने के तत्काल बाद ही मेरा चयन डाकविभाग में हो गया था. मेरे लिए यह ख़ुशी का समय था. और मैं देश की चर्चित-गौरवशाली परंपरा की धनी नगरी - संस्कारधानी 'जबलपुर' आ गया. इस शहर का इतिहास आज भी चमत्कृत करता है.

यह सन् १९६५ की बात है ... प्रधान डाक- घर जबलपुर में कार्य की अधिकता की वजह से साहित्य-सृजन का काम लगभग बंद सा हो गया था. बावजूद इसके समय-समय पर होने वाले कवि सम्मेलनो तथा देश-प्रदेश में ख्यातिनाम साहित्यकारो, जैसे सेठ गोविंददास, आचार्य रजनीश, व्यंग्य-शिल्प हरिशंकर जी परसाई व अन्य लोगो से मिलने अथवा सुनने का अवसर हाथ से जाने नहीं देता था.

रीजनल लायब्रेरी का सदस्य एवं लायब्रेरियन से पनपी दोस्ती के कारण किताबें पढ़ने का शौक बना रहा. रांगेय राघव मेरे सर्वाधिक पसंदीदा लेखक रहे हैं.

कुछ ही दिनों बाद मैंने अपने छोटे भाई को जो मैट्रिक की परीक्षा पास कर चुका था अपने पास बुलवा लिया था. डी. एन. जैन कॉलेज में उसे एडमिशन दिलवा दिया था. जब उसकी नौकरी लग गयी तो तीसरे भाई को आई. टी. आई. में दाख़िला दिलवा दिया था. संयोग से मुझे एक म्यूचुअल-ट्रांसफर मिल गया और मैं बैतूल आ गया. छिंदवाड़ा संभाग के अंतर्गत तब बैतूल, छिंदवाड़ा तथा सिवनी ज़िले आते थे. यहां आने के पश्चात मेरी लेखनी जो एक ठहरी हुई नदी की तरह थी, बह निकली थी. कवि-मित्रों का जमावड़ा होता, गोष्ठियां होतीं. मित्र चंदन मानेकर, श्री चंद्रशेखर मिश्रा, दर्द-होशंगाबादी, श्रीरामजी श्रीवास्तव प्रायः रोज़ ही मिला करते थे. यहां प्रतिवर्ष विराट-स्तर के कवि सम्मेलन हुआ करते थे.

बैतूल जे. एच. कॉलेज के मित्र प्रो. श्रीयुत श्रीवास्तवजी, जो हिंदी विभाग के प्रमुख थे, एक अच्छे संगीतज्ञ थे. उनके प्रयास से देश-विदेशों में ख्याति प्राप्त प्रसिद्ध नृत्यांगना सितारा देवी के प्रोग्राम का आयोजन किया गया था. पूरे एक सप्ताह की छुट्टी लेकर, मैं उनके अनुरोध के साथ उनसे जुड़ गया था. आयोजन सफल रहा. आयोजन में मिली भारी सफलता से उन्मादित हम अगला कार्यक्रम तय करते, कि संयोग से मेरा तबादला मुलताई हो गया. यह मेरे लिए सर्वाधिक ख़ुशी का विषय था. मैं यहां पूरे चार साल रहा.

यहां कवियों की जमात तो थी लेकिन कोई मंच नहीं था. तत्कालीन डाकपाल श्री एस. डी. श्रीवास्तवजी जो कभी मेरे साथ जबलपुर में भी थे, से विचार-विमर्श करने के पश्चात 'मुलताई साहित्य समिति' का गठन किया. यह संस्था आज भी इसी नाम से चल रही है. वर्तमान में श्री विष्णु मंगरूलकरजी इस संस्था के अध्यक्ष हैं. संस्था के गठन के साथ ही तत्कालीन तहसीलदार श्री सुंदरलाल मुद्गलजी ने संरक्षक होना स्वीकार किया. उन्हें साहित्य में गहरी रुचि भी थी. बैठकों और आयोजनों के ख़र्च की ज़िम्मेदारी उन्होंने उठा रखी थी. श्री रामेश्वर खाड़े प्रधान पाठक ने अपने स्कूल का हाल उपलब्ध करवाया. मित्र सूरज पुरी, रामचंद्र देशमुख, श्री एन. लाल जैन 'स्वदेशी', श्री नरेंद्रपाल सिंह 'पाल', श्री मिश्राजी एवं अन्य कवि-मित्र आये दिन गोष्ठियों में भाग लेते. प्रख्यात कवि श्री चंद्रसेन 'विराट' भी यहां रहे हैं. वे भी अपनी उपस्थिति से सहयोग बनाये रखते थे. रामचरित मानस मर्मज्ञ-मूर्धन्य विद्वान-मनीषी-चिंतक-प्रख्यात साहित्यकार माननीय श्री बलदेव प्रसाद मिश्र एवं अन्य विशिष्ठ जनों की यहां उपस्थिति एवं कार्यक्रम हुए.

प्रख्यात समाजसेवी, स्वतंत्रता सेनानी आदरणीय सोम्मारपुरी गोस्वामी, आदरणीय श्री रामजीराव पाटिल, आदरणीय श्री रामेश्वर खाड़े अपने संघर्ष के दिनों की याद ताज़ा करते हुए, हमें अपना पूरा सहयोग देते थे.

मेरा चयन अंग्रेजी मोर्स प्रशिक्षण के लिए हो गया और मैं भोपाल आ गया. प्रशिक्षण के दौरान मेरी भेंट अक्सर प्रख्यात गीतकार श्री राजेंद्र अनुरागीजी से होती. उनका कार्यालय, हमारे प्रशिक्षण स्थल से क़ाफी नज़दीक था. यहां रहते हुए दो बार मुझे

आकाशवाणी से अपनी कविताएं प्रसारण का भी अवसर मिला. प्रशिक्षण के समापन पर आयोजित एक सांस्कृतिक कार्यक्रम में मेरी लिखी कविता जो मोर्स पर आधारित थी, "नदी के डैश-डॉट", न सिर्फ़ पुरस्कृत हुई अपितु तत्कालीन पोस्टमास्टर जनरल श्री वेलणकरजी ने मुझे प्रशस्ति-पत्र भी दिया था.

मेरी पोस्टिंग छिंदवाड़ा हो गयी. मैं यहां ७५ से ७६ तक रहा. प्रशासनिक कार्यालय में तीन साल तक रहने के बाद पुनः मेरी पोस्टिंग बैतूल हो गयी. बैतूल मेरे लिए कभी भी नया क्षेत्र नहीं रहा. जाने के साथ ही पुनः मैं अपनी रचना-प्रक्रिया-क्रियाकलापों में संलग्न रहा. सन् ८२ में पुनः छिंदवाड़ा आ गया. अब की बार मैं इस सोच के साथ आया था कि लंबे समय तक यहीं, एक ही जगह रहूंगा.

सन् ८२ मेरे लिए एक स्वर्ण-युग सा था. यहां तब समांतर सम्मेलन आयोजित किया गया था. बाबा संपतराव धरणीधर प्रख्यात कवि/चितक/मनीषी/समाजसेवी/चित्रकार जिनकी कविता 'अपना मध्य प्रदेश' पाठ्यक्रम में शामिल की गयी थी, एवं प्रख्यात कथाकार भाई हनुमंत मनगटे के साझे प्रयास से आयोजित किया गया था; जिसमें देश के प्रख्यात पटकथा लेखक 'सारिका' के संपादक कहानीकार श्री कमलेश्वर एवं अन्य साहित्यकारों का कुंभ-मेला लगने वाला था.

छिंदवाड़ा शुरू से ही धार्मिक-सांस्कृतिक व राजनैतिक चेतना का मंच रहा है. माननीय बाबा (स्व.) संपतराव धरणीधर एवं भाई मनगटे के संयुक्त प्रयास से एक संस्था 'चक्रव्यूह' का गठन किया गया था. जिसके साहित्य सचिव श्री राजेंद्र मिश्रा 'राही' ने अपने अथक प्रयास से चार चांद लगाये. प्रो. पंकज सक्सेना, श्री सलीम जुन्नारदेवी, श्री रामकुमार शर्मा इस संस्था के प्रमुख स्तंभ थे. मुझे इस संस्था का दो सालों तक सचिव रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. 'चक्रव्यूह' अपनी अनूठी प्रस्तुति के लिए पूरे प्रदेश में अपनी पहचान बना चुका था.

इस संस्था के बैनर के तले एक भव्य आयोजन प्रमुख डाकघर छिंदवाड़ा के प्रांगण में 'पाति' विषय को लेकर हुआ. अपनी चोंच में चिट्ठी दबाये हुए एक कबूतर का छायाचित्र मैंने तैयार किया था. प्रत्येक सहभागी कवियों को स्मृति-चिन्ह के साथ, इस चित्र की (फोटो-कॉपी) एक-एक प्रति भी सौजन्य-भेंट में दी गयी थी. यह कार्यक्रम इतना ज़बरदस्त चर्चा का विषय बना था, जिसकी स्मृति आज भी लोगों के ज़ेहन में है. कुछ पदाधिकारियों व मित्रों के तबादले की वजह से यह संस्था मृतप्राय सी हो गयी थी. बाद में बंद ही हो गयी.

भाई हनुमंत मनगटे जी को म. प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन ज़िला इकाई छिंदवाड़ा का प्रधान-मंत्री नियुक्त किया गया. विगत पांच सालों से यह संस्था दो दिवसीय कार्यक्रम के अंत में स्वर्गीय बाबा धरणीधर की स्मृति में व्याख्यानमाला का आयोजन नवंबर माह में भव्य-स्तर पर करती आ रही है. इस मंच पर अब तक नवभारत टाइम्स ऑफ इंडिया के कार्यकारी संपादक, देश-विदेशों में प्रख्यात कवि आदरणीय श्री विष्णु खरे, श्री लीलाधर मंडलोई प्रख्यात कवि, निदेशक दूरदर्शन, नवगीत के हस्ताक्षर प्रो. नईम, 'लोकमत' के पूर्व संपादक श्री एस. एन. विनोद, नागपुर 'भास्कर' के संपादक श्री प्रकाश दुबे, श्री चंद्रकांत पाटिल, प्रो. कमला प्रसाद एवं राजेंद्र शर्मा संपादक 'वसुधा', श्री गोविंद उपाध्याय, श्री सनत जैन जैसे प्रख्यात साहित्यकारों ने अपनी उपस्थिति से इसे और भी गरिमामय बना दिया है.

प्रख्यात साहित्यकार श्री दामोदर सदन, श्री मनीष राय यादव यहां पदाधिकारी रहे हैं. श्री भाऊ समर्थ, श्री प्रभाकर श्रोत्रिय, डॉ. दामोदर खड़से, श्री चंद्रकांत पाटिल समय-समय पर यहां आते रहे हैं.

कविता के इस अनंत प्रवाह में अनुशासन एक बेड़े की तरह होता है. जिसे एक काल-खंड और मंज़िल पार कर लेने के बाद छोड़ देना पड़ता है. आगे की यात्रा के लिए दूसरी नाव और मंज़िल तलाशनी होती है. मेरे साथ भी जाने-अनजाने में यह हुआ और कहानियां लिखने लगा. एक दशक से कुछ ज़्यादा समय से मैं कहानियां लिख रहा हूं.

समाचार-पत्रों एवं डाक-मंत्रालय से निकलने वाली पत्रिका 'डाक-तार' (बाद में 'डाक-पत्रिका') में मेरे लेख-कविताएं-व्यंग्य-क्षणिकाएं नियमित रूप से छपती रहीं. अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित कहानी प्रतियोगिता में मेरी कहानी 'रजनीगंधा' प्रथम रही. प्रशासनिक कार्यालय में कार्य करते हुए मेरे लेख प्रथम रहते थे (हिंदी के लेखन को लेकर एक अभिनव योजना आयी थी जिसमें कार्यालय सहायक हिंदी में पत्राचार करें. पूरे वर्ष में कम से कम हिंदी के दस हज़ार शब्दों को लिखा जाना अनिवार्य था.) तथा बाद में हिंदी विषय पर (किसी एक ख़ास विषय पर) लेख लिखना होता था. प्रथम दो पुरस्कार ८००/-रु., द्वितीय दो पुरस्कार ३००/-रु., तृतीय दो पुरस्कार २००/-रु. के होते थे) मुझे पूरे पांच साल तक प्रथम अथवा द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुए.

मैंने एक कहानी 'एक मुलाक़ात' पहली बार लिखी. अपनी फैंटेसी के लिए वह चर्चा का विषय बनी. इस तरह मैं एक कवि से कहानीकार बन बैठा. अपने प्रशंसकों, संपादकों तथा कथाकार मित्रों से मित्रता स्थापित हुई.

प्रदेश एवं देश की प्रतिष्ठित पत्रिका रूपांबरा (कोलकाता), कथाबिंब (मुंबई), समरलोक (भोपाल), कृति-परिचय (भोपाल), अक्षर-शिल्पी (भोपाल), झंकृति-मनोरम (धनबाद), दुनिया (नागपुर), पूर्वा (नागपुर), पंजाबी संस्कृति (हिसार), तूलिका (भोपाल), पनघट (पटना), पृथ्वी और पर्यावरण (ग्वालियर), आलाप (बैकुंठपुर), प्रगतिशिल-आकल्प (मुंबई), इरावती (धर्मशाला) तथा द्वीप-लहरी (पोर्ट-ब्लेयर) में मेरी अनेक रचनाएं छपीं. मेरी दो कहानियां 'जूती' व 'फांस' पुरस्कृत हुईं.

मेरी कछ कहानियों का इतर भाषा में भी रूपांतरण किया

गया. भाई मुबीन ज़ानिम ने उर्दू में तथा नागपुर के मित्र दत्तात्रेय पुरुषोत्तम हरदास ने मराठी भाषा में किया है.

सन् २००२ में मेरी पदोन्नति हुई. मैं कवर्धा (छत्तीसगढ़) मुख्य डाकघर के पोस्टमास्टर के पद पर पदासीन हुआ. सपने सच हुए. एक डाक-सहायक के पद से पोस्टमास्टर की यात्रा रोमांचित करती है. अपनी कर्तव्यनिष्ठ-सदाचार एवं समन्वय से यह संभव हुआ.

देशबंधु (समाचार-पत्र) के संपादक/लेखक/पत्रकार भाई ललित सुरजन एवं छत्तीसगढ़ के कथाकारों एवं कवियों से सौजन्य भेंट भी हुई. बिलासपुर से निकलने वाले अख़बार 'हरि-भूमि' ने मेरी पांच माह में चार कहानियां छापीं.

अपनी यात्रा के इस सफलतम पड़ाव पर पहुंच कर समय पूर्व सेवानिवृत्ति ले लेने का मानस बना चुका था. पारिवारिक जिम्मेदारियां लगभग समाप्त हो चुकी थीं. बड़े बेटे डॉ. आलोक कुमार यादव ने सागर विश्व विद्यालय में एम्. कॉम्. में प्राविण्य-सूची (टॉप-पोजिशन) में स्थान पाया और बाद में वह लोकसेवा आयोग की परीक्षा उत्तीर्ण कर महिला पॉलीटेक्निक कॉलेज में माडर्न ऑफिस में मैनेजमेंट विषय के व्याख्याता के पद पर पदस्थ हो चुका था. इनकी लिखित दो किताबें कॉलेज स्तर पर कोर्स में हैं. छोटा बेटा रजनीश 'गुडविल एकाउन्टस् अकादमी' का संचालक है. जहां वह बच्चों को 'टैली' का प्रशिक्षण देता है. बेटी अर्चना ने मॉडर्न ड्रेस डिजाइन से डिप्लोमा किया और अब वह अपनी बुटिक चलाती है. दामाद पप्पू यादव अपने व्यवसाय के साथ ही नगराध्यक्ष है. पत्नी शकुंतला यादव को भजनों एवं लोकगीतों में महारत हासिल है. इनका एक कैसेट भी अभी हाल में ही जारी हुआ है. दोनों बहुएं सर्विस में हैं. यह मेरे लिए सर्वथा उचित समय था कि मैं सेवानिवृत्ति लेकर साहित्य-साधना में जुट जाऊं. रचना प्रक्रिया अपनी जगह है और अध्ययन अपनी जगह. अब समय ही समय है. ख़ूब पढ़ता हूं. जमकर पढ़ता हूं और लिखता हूं.

सेवानिवृत्ति के ठीक तीन माह पश्चात मेरा पहला कहानी संग्रह 'महुआ के वृक्ष' आया. पाठक-मंच के संयोजक श्री ओमप्रकाश 'नयन' के संचालन में प्रख्यात साहित्यकार श्री शिवकुमार 'मलय' जी ने लोकार्पित किया. समीक्षा-गोष्ठी में भोपाल से कथाकार भाई मुकेश वर्मा, श्री बलराम गुमास्ता, श्री मोहन सगोरिया एवं नागपुर से कवि/समीक्षक बहन श्रीमती इंदिरा किसलय' ने स्वेच्छा से आकर गरिमा प्रदान की. दूसरा कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन है. पहले संग्रह में दो शब्द भाई हनुमंत मनगटे जी ने लिखा था. दूसरे संग्रह के लिए प्रसिद्ध कथाकारा उर्मिला शिरीष जी दो शब्द लिख रही हैं.

उन कुछ दिव्य-स्मृतियों को भी मैं आप सब में बांटना चाहूंगा. सन् ०४ में देश-विदेशों में चर्चित एवं फ़िनलैंड के राष्ट्रीय सम्मान 'नाइट ऑफ दि ऑर्डर ऑफ़ दि व्हाईट रोज़' तथा हंगरी

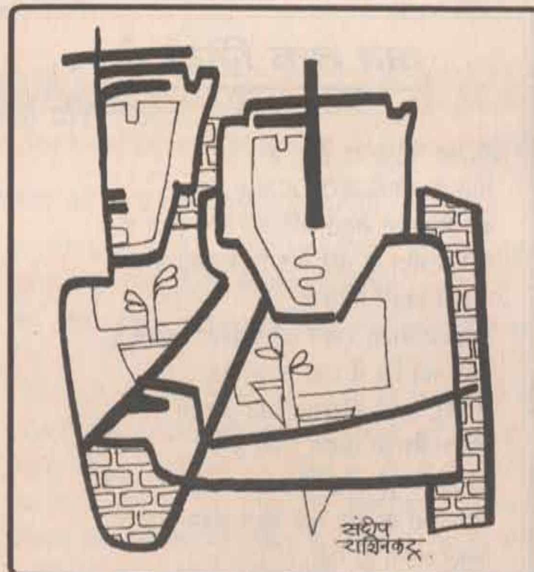

के 'एंद्रे अदी' पदक से सम्मानित, एवं अन्य विशिष्ट सम्मानों से नवाज़े गये मेरे अग्रज माननीय श्री विष्णु खरे की सुपुत्री अनन्या के विवाहोत्सव २६ दिसंबर में शामिल होने का स्वर्णिम अवसर मिला. दिल्ली में आयोजित भव्य समारोह में अशोक बाजपेयी जी, विष्णुनागर जी, राजेंद्र यादव जी, हरिनारायण जी, युवा कवि पवनकरण और भी अनेक गणमान्य लोगों से मिलने का प्रत्यक्ष अवसर मिला. दिल्ली से लौटते समय उज्जैन भी रुका था. महाकाल के दर्शन की जहां प्रगाढ़ भावना थी, वहीं साहित्य के एक अनन्य पुजारी श्री चंद्रकांत जी देवताले से मिलने की प्रबल इच्छा. श्री देवताले जी का जन्म स्थान भी मुलताई (जौलखेड़ा) ही है. बरसों पुरानी इच्छा फलवती हो रही थी. हालांकि देवताले जी से पत्र-व्यवहार तो था लेकिन कभी मिलना नहीं हो पाया था. अपने दर्जनों काव्य-संग्रहों में से जो एक संग्रह 'आग हर चीज़ में बताई गयी है' उपलब्ध था, पर उन्होंने यह लिखकर 'घर गांव के आत्मीय मित्र-कथाकार श्री गोवर्धन यादव के लिए.... अत्यंत स्नेह सहित. (हस्ताक्षर)' आशीर्वाद स्वरूप अपनी कृति भेंट में दी. एक कवि-कथाकार वही तो देगा जो उसके जीवन का सर्वश्रेष्ठ होता है.

अरविंद जी ने मुझसे अपना आत्म-कथ्य लिखकर भेजने को कहा. पत्र पाकर अत्यंत ही प्रसन्नता हुई थी. लेकिन वह ख़ुशी, मन को ज़्यादा देर तक बहला न सकी थी. मन में एक बड़ा अजीब सा डर समाया था कि कहीं आत्म-कथ्य, आत्म-प्रशंसा न बन जाये. अपनी आत्म-मुग्धता को बलाये ताक़ पर रखते हुए मैं वह सब कुछ कह पाया जो सत्य है.

इकसठ वर्ष के धूप-छांव, तो कभी मटमैले समय में मैं जो कुछ भी लिख पाया, वह सब कुछ आप लोगों के सामने है. सब

अब तक ज़िंदा हूं

मैं कुछ नहीं कर सकता !

✍ नरेंद्र कुमार 'भारती'

मैं जब भी व्यस्त होता हूं
मौत के क़ाफी क़रीब होता हूं,
तब मेरे पास बहुत अधिक समय होता है,
वैसे मैं मौत से कई बार मिल चुका हूं.
जब मैं ख़ाली होता हूं,
ख़ुद को व्यस्त रखने की क़ोशिश करता हूं.
ऐसा नहीं कि मैं सदा व्यस्त रहूं,
लेकिन, अपने अधिकारों का उपयोग
मुझे भलीभांति करना आता है,
अधिकार मुझे कोई विरासत में नहीं मिला है,
अधिकारों के लिए मुझे बहुत लड़ना पड़ा है.
केवल लड़ना ही नहीं
कई बार मुझे मरना भी पड़ा है
इसीलिए मैंने मौत को कई बार क़रीब से देखा है
अब मैं यही सोचता हूं -
बचपन से जो मैंने सुना था
अधिकार खोकर बैठ रहना महादुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है,
लेकिन फिर सोचता हूं
क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को अपराध
लेकिन,
मैं छोटा बनूं या बड़ा ?
यही सोच कर मैं मरकर भी अब तक ज़िंदा हूं.

हर अधिकार को मांगती वह
मेरे दरवाज़े तक नहीं पहुंच पाती है.
पहुंच पाती हैं बस केवल उसकी नज़रें,
जिनमें अभी भी सूजन है.
देख नहीं सकती है वह,
पहचान नहीं सकती है वह
क्योंकि जिसने उसे बेरहमी से पीटा था
वह मेरे पास ही खड़ा था.
मैं मन ही मन यह सोचने लगा हूं -
काश, मैं इस अबला को कुछ दे पाता,
जिसने उसकी यह दशा बनायी है
उसे यदि मैं दंडित कर पाता,
लेकिन मैं आज ख़ामोश हूं
क्योंकि मैं गहन चिकित्सा कक्ष का
वह मरीज़ हूं,
जो सब कुछ देख सकता है,
सब कुछ सुन सकता है,
पर कर कुछ नहीं सकता.

✉ **बैंक ऑफ महाराष्ट्र,**
परिमंडल कार्यालय, एपीजे हाउस,
वी. बी. गांधी मार्ग, फोर्ट, मुंबई - ४०००२३.

कुछ तो लिखा जा सका - लेकिन 'अपने समय को लिखते हुए' जाना कि कितना कठिन होता है, अपने बारे में लिख पाना.

समय के इस चक्र-चाल में, आज यह ज़रूरी नहीं है कि आप कितना जियें, यहां ज़रूरी यह है कि आपने कितनी सार्थक ज़िंदगी जी, आपने इस समाज को क्या दिया... देश को क्या दिया ? पैदा होने के साथ ही हमारे ऊपर मातृ-पितृ ऋण, समाज व देश ऋण था, आपने अब तक कितने ऋणों की भरपाई की.

मैं जानता हूं कि इस सेतु-बंध में मेरी भूमिका वीर हनुमान, तथा कुशल इंजीनियरों नल तथा नील की सी भले ही नही रही हो, मैं सदा से ही अपनी उपस्थिति उस गिलहरी की सी पाता हूं जो समुद्र के पानी से अपने शरीर को भिगोकर, रेत पर आकर लेटती थी और शरीर से लिपटे रेत-कणों को समुद्र में डुबकी लगाकर छोड़ आती थी. इस छोटे से जीव के रूप में मैं कुछ कर पाया, यह मेरे लिए परम संतोष एवं आत्म-संतुष्टि के लिए पर्याप्त है.

अंत में मैं यह बताने से भी अपने आपको रोक नहीं पा रहा हूं कि मैं अब भी सब कुछ नहीं जानता और यही न जानना, मुझमें अनंत-स्फूर्ति भर देता है. मैं तो यह भी नहीं जानता कि जो बातें मेरे लिए बेहद ज़रूरी और महत्वपूर्ण थीं - और हैं, आपको अत्यंत ही साधारण प्रतीत हों, इसके लिए मैं माफ़ी चाहता हूं. माफ़ी इस बात के लिए भी मांगता हूं कि मैंने अपने बारे में कुछ ज़्यादा ही लिख दिया है. यदि न लिख पाता तो शायद बात अधूरी लगती.

बस इतना ही.

✉ **१०३, कावेरी नगर,**
छिंदवाड़ा (म. प्र.) ४८०००१

सागर / सीपी

'अच्छे लेखन के लिए संवेदनशीलता ही पहले शर्त है !'

- डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी

(व्यंग्यकार श्री ज्ञान चतुर्वेदी से श्रीमती मधु प्रकाश की 'कथाबिंब' के लिए भेंटवार्ता)

● आपने लेखन की शुरूआत कैसे की और आपके प्रेरणा-स्रोत कौन रहे ?

मेरे पिता मध्यप्रदेश के गांव में डॉक्टर थे. उस समय मैं चौथी या पांचवी कक्षा में था. झांसी के आस-पास एक जगह है भांडेर. वहीं से मेरी पहली रचना छपी यानि कि ९-१० वर्ष की उम्र के दौरान ! किताबें पढ़ता था तो लगता था कि लिखूं. लिखने की शुरूआत कविता से की. अपने एक भाई और एक दोस्त को मिलाकर बाल-सभा बनायी, जहां रचना सुनानेवाला सिर्फ़ मैं था और श्रोता वही पके-पकाये भाई और दोस्त. बाद में विभिन्न तुकबंदियों से बनी मेरी पहली कविता 'दैनिक जागरण' के रविवारीय परिशिष्ट में छपी.

मेरे प्रेरणास्रोत रहे हैं मेरे नाना घनश्याम पांडे. वे ओरछा के राजकवि थे. मेरे मामाजी बहुत बड़े कवि थे. मेरी माताजी के अनुसार घर में बैठकें हुआ करती थीं, जहां मैथिलीशरण गुप्त अक्सर कविताएं सुनाया करते थे. मैं जब सातवीं कक्षा में पहुंचा, तो 'पंचवटी' पढ़ी और उससे प्रेरणा लेकर ५२ छंदों का खंडकाव्य लिखा. तो इस तरह शुरूआत हुई. जब मैं ग्यारहवीं में था तो दो जासूसी उपन्यास लिख मारे, जिन्हें मेरे रिश्तेदार ने अपने नाम से छपवा लिये. वहां मैं कहीं नहीं था. उम्र के उस दौर में मन में उठती बेचैनी को क्रम नहीं दे पा रहा था. इस दौरान कृश्नचंदर को काफ़ी पढ़ा. मेडिकल में जाने से पहले यानि १९६५ में व्यंग्य लेखक परसाई जी को पढ़ा और तय कर लिया कि व्यंग्य-विधा को अपनाना है. मेरे मित्र अंजनी चौहान गजब के व्यंग्यकार हैं और उनके आग्रह पर 'धर्मयुग' में पहली व्यंग्य रचना भेजी और पहली बार में ही छप गयी.

● पेशे से डॉक्टरी और रचनाकार के रूप में किस मानसिकता से आप गुज़रते हैं ?

देखिए, डॉक्टरी एक ऐसा प्रोफेशन है, जहां जीवन के इतने रंग दिखाई देते हैं कि आंखों के सामने से सब पर्दे हट जाते हैं. कई बार पति-पत्नी आपस में जो शेयर नहीं कर पाते वह वे डॉक्टर के साथ खुलकर शेयर कर लेते हैं. बस, शर्त यह है कि डॉक्टर अच्छा हो. अपने प्रोफेशन की वजह से मुझे बहुत गहरे तक ज़िंदगी देखने को मिली है. हां, यदि आपमें संवेदनशीलता है तो यह व्यवसाय आपको अच्छा लेखक बनाता है. यदि लेखक के तौर पर संवेदनशील हैं तो... अंततः मेरा प्रोफेशन और मेरा लेखन एक-दूसरे के पूरक हैं, न कि परस्पर विरोधी.

● लेकिन डॉक्टर होने के नाते क्या आपको समय मिल पाता है ?

जहां तक समय की बात है; तो यह तो आपको ख़ुद तय करना है. मैंने सामाजिक प्रतिबद्धताएं कम करके यह समय अपने लेखन को दिया. एक बात याद रखिए कि ज़िंदगी में प्रमुखताएं तय करनी पड़ती हैं. मेरा समय तीन जगह बंटा है - लेखक, प्रोफेशन और परिवार. मेरे लेखन ने डॉक्टर को जनरेट किया है और संवेदनशील होने के नाते डॉक्टरी प्रोफेशन में फायदा हुआ है.

● कृपया बतायें कि 'बारामासी' उपन्यास किन स्थितियों में लिखा गया ?

मैं श्रीलाल शुक्ल का "राग-दरबारी" पढ़कर अभिभूत हो गया. महसूस हुआ कि यह होता है व्यंग्य. मैंने अपने दोस्त अंजनी चौहान के साथ मिलकर व्यंग्य-उपन्यास लिखने का निर्णय लिया. डॉक्टरी पर उपन्यास लिखने का सोचा. मैंने करीब अस्सी पृष्ठ लिखे और अंजनी ने छः पेज लिखकर लिखना बंद कर दिया. १९९० में दोबारा उपन्यास लिखने की सोची और यह १९९४ में "नरक-यात्रा" उपन्यास के रूप में फलीभूत हुई. लेकिन मुझे मज़ा नहीं आया. उस समय क़रीब-क़रीब सब पत्रिकाएं बंद हो गयी थीं. अख़बारों के कॉलम में कुछ नया करने की गुंजाइश नहीं थी. मैं लंबी व्यंग्य-रचनाओं के लिए बदनाम था. भारतीजी द्वारा मांगी गयी रचनाओं की शब्द-सीमा १००० होती थी, पर मैं दावे से कहता हूं कि मेरी रचनाओं को उन्होंने कभी नहीं काटा.

अरे हां, जहां तक "बारामासी" की बात है तो मेरे अनुसार जीवन बहुत कुछ है. अंतर्वैयक्तिक, पारिवारिक घटनाओं पर हिंदी व्यंग्य ने कभी बात ही नहीं की. सिवाय प्रेमिकाओं या पड़ोसिनों पर व्यंग्य करने के सिवाय कुछ नहीं किया. मेरे मन में यह सवाल उठा कि क्या यह व्यंग्य की कमज़ोरी है, या व्यंग्यकार की ? तो यह अब सारी चीजें एक जगह मिल गयीं, तो 'बारामासी' का जन्म हुआ. मुझे इस बात का संतोष है कि यह उपन्यास व्यंग्य को ऐसी दिशा में ले गया, जहां हिंदी व्यंग्य गया ही नहीं था. बुंदेलखंड की प्रतिदिन की ज़िंदगी में व्यंग्य है, वहां हर व्यक्ति

२ अगस्त १९५२, मऊरानीपुर (उ. प्र.)

शिक्षा : मध्यप्रदेश के क़स्बों में बिखरे सरकारी 'फट्टा' स्कूलों में स्कूली शिक्षा के बाद में मेडिकल कॉलेज रीवा से कई स्वर्ण पदकों के साथ एम. बी. बी. एस. एवं एम. डी. (मेडिसिन) तक शिक्षा. बाद में कॉर्डियोलॉजी में अपोलो अस्पताल तथा फ्रांस में विशेष प्रशिक्षण. फ़िलहाल भेल (भोपाल) में चिकित्सा विशेषज्ञ तथा कॉर्डियोलॉजी के प्रमुख प्रभारी.

लेखन : अभी तक तीन सौ से अधिक रचनाएं सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. 'प्रेतकथा', 'दंगे में मुर्गा', 'सांप और सावन की घटा', 'बारामती' (चारों व्यंग्य उपन्यास) प्रकाशित.
दो व्यंग्य-संग्रह शीघ्र प्रकाश्य. एक और नया व्यंग्य-उपन्यास तथा एक व्यंग्य-नाटक लिखने में व्यस्त. फिल्म व टीवी के लेखन में भी सक्रिय. मंच से व्यंग्य रचना-पाठ में अद्‌भुत. कुछ शोधपत्र चिकित्सा के क्षेत्र में भी.

सम्मान : चकल्लस पुरस्कार, अट्टहास युवा सम्मान, टेपा सम्मान, म. प्र. साहित्य परिषद, अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान तथा उ. प्र. हिंदी संस्थान के राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित. अभी हाल ही में स्नेहलता गोइन्का व्यंग्य भूषण पुरस्कार से अलंकृत.

वक्रोक्ति में ही बात करता है. सीधी बात करे तो बुंदेलखडी है ही नहीं वह. तो बुंदेलखंड का कर्ज़ भी चुकाना था, इसलिए बुंदेलखंड को लिया और इस तरह यह लंबी रचना लिखी गयी.

● **आप 'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' से नवाज़े गये हैं. बड़े पुरस्कारों की तुलना में इस सम्मान की भिन्नता और उपादेयता के बारे में आप क्या सोचते हैं ?**

जब लंदन में यह पुरस्कार मिला तो मैंने बड़े मन से स्टेटमेंट दिया था कि हिंदी में दो तरह के लेखक हैं - एक वे जो अपना

डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी

✉ ४०, अल्कापुरी, भोपाल

बायोडाटा बनाते हैं, पुरस्कारों, सम्मानों एवं ऐसी ही जुगाड़बंदियों के ज़रिये. दूसरे लेखक वे हैं जो बस रचनाकर्म करते हैं. हिंदी में प्रायः बड़े सम्मानों का एक तिलिस्मी किला बन गया है जिसे तोड़ने के लिए भूतनाथ जैसी ऐय्यारी और तिकड़मोंवाली चाबी होनी चाहिए. आपके पास षड्यंत्रों के लिए काफ़ी समय हो तो आप इसमें घुस सकते हैं. इस प्रक्रिया के दौरान आप धीरे-धीरे लेखन से दूर होते चले जाते हैं. मेरा अपना विश्वास है कि ख़ूब लिखिए, वही सबसे बड़ा सम्मान है. मेरा अनुभव है कि अच्छे लेखन को लंबे समय तक इग्नोर नहीं किया जा सकता. पुरस्कार सम्मान प्रासंगिक हैं या नहीं, यह मूल मुद्दा नहीं है और लेखन में तो कतई नहीं.

आज जहां तक 'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' की बात है तो इस सम्मान ने हिंदी जगत में एक विश्वसनीयता वाला स्थान प्राप्त कर लिया है. इसका कारण शायद चयन प्रक्रिया को पारदर्शी बनाये रखना और तिलिस्मी किला न बनने देने का संकल्प है. इसके आयोजकों के इसी संकल्प ने इस सम्मान को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाया है. पहले दो लेखक - श्रीमती चित्रा मुद्‌गल एवं संजीव के लेखन में क़द की ऊंचाई और उनकी कृतियां इतनी विश्वसनीय और सम्माननीय प्रतिष्ठ पा चुकी थीं कि इंदु शर्मा कथा सम्मान देनेवाले आयोजकों ने इन कृतियों का चयन करके कहीं संदेश दिया था कि उनके निकट इस सम्मान को देनेवालों का क्राइटीरिया केवल गुणवत्ता ही होगी, कोई अन्य बात नहीं. मैं न तो तेजेंद्र शर्मा को जानता था और न सूरज प्रकाश को. लंदन जाने से पहले मेरा इनसे कोई संबंध नहीं था और एक रात को लंदन से सम्मान के विषय में सूचित किया जाता है तो कहीं आनंद और आश्चर्य होता है कि दूर भी कहीं कोई आपकी रचना को ऑब्जेक्टिव ढंग से देखकर तथा आकलन करके चीज़ें तय करता है. यह बहुत बड़ी बात है. विशेष तौर पर लंदन में ८-१० दिन गुज़ारकर, ट्रस्ट की गतिविधियां देखकर आश्चर्य हुआ कि तेजेंद्र, नैनाजी, उनके बच्चे और भारत के प्रतिनिधि सूरज प्रकाश इस सम्मान की विश्वसनीयता तथा गरिमा बनाये रखने के लिए कितना परिश्रम करते हैं और कितने सतर्क हैं.

इसलिए इस सम्मान को पाकर मुझे गहन संतोष हुआ है, इसलिए नहीं कि मुझे लंदन घूमने का चाव था, विदेश पहले भी गया था, पर एक चौकस और सतर्क चयन प्रक्रिया के मार्फ़त यदि आपको यह सम्मान मिलता है तो कहीं लगता है कि आपकी रचना को गुणों पर तौला गया है. मुझे विश्वास है कि आनेवाले वर्षों में यह विश्वसनीयता इसी तरह बरक़रार रहेगी.

श्रीमती मधु प्रकाश

✉ ए १/१०१, रिद्धी गार्डन, फिल्म सिटी रोड, मलाड (पू.), मुंबई ४०००९७.

गुमनाम शायर की याद में...

विजय

एस.एन. रूपायन का जन्म लाहौर में १९२० में हुआ था. पूरे छियासी साल बीत गये हैं. रूपायन लाहौर छोड़ कर हिंदुस्तान आ गये. आज इनके बेटे की दुकान है इंदौर में, क़िताबों की ज़हां अंग्रेजी के क्लासिक्स के साथ प्रेमचंद और उर्दू के लेखक भी दिखाई दे जायेंगे. रूपायन का एक बड़ा संतोष है यह क़िताबों की दुकान. शरणार्थी बनकर आये इस व्यक्ति में साहित्य के लिए गहरा अनुराग है. हिंदी या उर्दू का कोई साहित्यिक उत्सव हो, रूपायन अपनी लेखिका पत्नी के साथ वहां ज़रूर दिखाई देंगे.

ताज़्ज़ुब तब हुआ जब ज्ञात हुआ कि ख़ुद रूपायन एक अच्छे शायर हैं. मुद्दत कत्आत लिखते रहते हैं मगर अपने लेखन को उन्होंने अपनी शोहरत के लिए कभी इस्तेमाल नहीं किया. बहुत इसरार करने पर ही वे कुछ सुनाते हैं. वह भी सकुचाते हुए. जबकि इंदौर के कई शायर उन्हें उस्तादों की गिनती में रखते हैं. दो बेटे हैं उनके. एक ने टुकड़े-टुकड़े हयातनाम से उनके कत्आत की एक क़िताब छपवा डाली तो छोटे बटे ने भी क़दम बढ़ा दिये और हिंदी में उनके कत्आत 'हमारी बात' के रूप में सामने आ गये. मगर आज भी रूपायन ग़ालिब, मीर व उर्दू के मौज़ूदा शायरों के बारे में तो बात करते हैं मगर जब उनकी शायरी की बांत उठती है तो ख़ामोश हो जाते हैं. मगर 'हमारी बात' में सिर्फ़ एस. एन. रूपायन के कत्आत ही नहीं हैं. आधे से ज़्यादा पृष्ठें पर उनकी पत्नी लीला रूपायन की कहानियां भी हैं. ऐसा जोड़ा मुश्किल से ही बनता है कि मियां बीबी दोनों साहित्यकार हों और गृहस्थी ठीक ठक चले.

एक वक़्त था जब रूपायन के कत्आत में अरबी शब्द ज़्यादा भरे रहते थे, मगर आज उनके कत्आत आम आदमी की ज़ुबान ज़्यादा बोलते हैं....

ज़िंदगी को लेकर रूपायन क्या कहते हैं, यह ज़रा देखने की बात है.....

१. आरज़ुओं की इसमें हरियाली
और फिर रंगे-इंतिज़ार भी है ।
इसीलिए मेरे मन के आंगन में
हर समय ताज़गी बहार की है ।।

२. फ़िक्र में ताज़गी की ख़ातिर हम
ज़हन को यूं झंझोड़ देते हैं ।
जिस तरह सांप एक उम्र के बाद
कैंचुली अपनी छोड़ देते हैं ।।

३. फ़ज़ाओं में अमर रस घोलती हैं
उड़ाने के लिए पर तोलती हैं ।
वहां पहुंचा हूं यारो अब मैं
जहां तन्हाइयां भी बोलती हैं ।।

४. हादसे रोज़ होते रहते हैं
ख़ुदको जिनसे बचा नहीं सकते ।
इसपे मज़बूरियां कि ज़ख्म अपने
हम किसी को दिखा नहीं सकते ।।

५. रोशनी की हमें ज़रूरत है
चांद सूरज मिलें तो ले आयें ।
रात आ गयी है बस्ती में
उसको खाली घरों में ठहरायें ।।

६. शहर की जब भी नौजवां सड़कें
गांव के पास तुझको लायेंगी ।
तेरी मंज़िल कहां है उस वक़्त
बूढ़ी पगडंडियां तुझे बतायेंगी ।।

७. शाम के वक़्त घर जब आता हूं
अपने अफ़सुर्दा सोच में खोया ।
देखता हूं कि घर का दरवाज़ा
इक मुजस्सम सवाल है गोया ।।

हज़ारों कत्आत हैं इन बुज़ुर्ग पोशीदा शायर के पास. गहरा दर्द महसूस करते होंगे रूपायन अपने कत्आत की तन्हाई पर जो एक अंतिम थकान की तरह चार पंक्तियों में उभरता है...

ख़त्म आख़िर सफ़र ये कब होगा,
पांव थककर हुए हैं चकनाचूर ।
कब का हद्दे-गुमां को लांघ आया
फिर भी हद्दे-यकीं बहुत है दूर ।।

जिन्हें उर्दू वाले भूले हुए हैं, उन्हें हम हिंदी वाले हमेशा याद रखेंगे...

११५ बी पाकिट जे एंड के,
दिलशाद गार्डन, दिल्ली -११००९५

पुस्तक समीक्षा

अपने समय और समाज को आवाज देती कविताएं

✍ अशोक प्रियदर्शी

बीस सुरों की सदी (कविता संकलन) : **विद्याभूषण**
प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, ४७१५/२१, दयानंद मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. **मू.** : १००/- रु.

विद्याभूषण किसी परिचय के मुहताज नहीं. ज़िंदगी की जद्दोजहद से जो कुछ सीख पाया है इन्होंने उसे नाना रूपों में, विभिन्न विधाओं में लगातार शब्दबद्ध करते रहे हैं. कबीरी अंदाज़ का यह कवि कागद पर लिखते हुए 'कागद की लेखी' नहीं दुहराता, आंखन की देखी को पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करता है. अपने समय और समाज को कैसे स्वर दें, इस विकलता में कवि विद्याभूषण को कभी कहानियों का ढांचा भाता है, कभी नाट्य विधा अपनी ओर खींच लेती है और कभी वैचारिक गद्य-भूमि में उतरना पड़ता है. कभी जी नहीं मानता तो पत्रकारिता में उतर आते हैं और फिर तुरंत बैताल की तरह कविता की डाल पर लौट जाते हैं. आठ कविता-संकलनों की संपदा थोड़ी नहीं होती. इन्हीं कवि विद्याभूषण का अद्यतन कविता-संकलन है 'बीस सुरों की सदी'. ज़ाहिर है ये बीस सुर अभी-अभी बीती बीसवीं सदी के विसंवादी सुरों को संकेतित करते हैं. विद्याभूषण की कविताएं पढ़ते हुए - प्रस्तुत संकलन की तो और भी, मुझको बारहा साहिर लुधियानी की वे पंक्तियां याद आ जाती हैं - *'दुनिया ने तजुर्बातो-हवादिस की शक्ल में / जो कुछ मुझे दिया है वो लौटा रहा हूं मैं.'*

प्रियदर्शन इस संकलन के संदर्भ में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, और बहुत ठीक लिखते हैं कि 'हिंदी पट्टी के बड़े हिस्से में रोज़ जिस तरह शोषण का पुराना चक्र और प्रतिरोध के नये पहिये एक-दूसरे से गुत्थम-गुत्था हैं, उसकी ज़्यादा वास्तविक कविता दिल्ली के बाहर रची जा रही है और उसका एक रूप विद्याभूषण की कविताओं में भी मौजूद है. ...इन कविताओं को पढ़ना दिल्ली के महानगरीय यथार्थ और वैश्विक भव्यता से आक्रांत समय के बाहर उस समय और समाज की धड़कन को पहचानता है जिनकी आवाज़ दिल्ली तक अमूमन नहीं पहुंचती.' दिल्ली के बहरे कानों को सुनने और उसकी गैंडे-सी मोटी चाम में कोई हरकत पैदा करने के लिए कवि सिरजता भी नहीं. मन की पीर बढ़ जाती है तो कविता रच जाती है - *'दो टप्पे गवेणियां/ टप्पा-शप्पा कुड़ नी चण्णा/दिल दा सांड कढ़ेणियां!'* विद्याभूषण के दिल का दर्द दिलों को छूता है, विकल करता है और कविता का काम भी क्या है ? दिलों को क्षुद्र बंधनों से मुक्ति दिलाना ही तो, जिसे पं. रामचंद्र शुक्ल हृदय की मुक्तावस्था कहते हैं !

असल में झारखंड के पठार की पीड़ा कवि विद्याभूषण को आकुल-व्याकुल कर देती है, और अतिरिक्त पीड़ा यह कि पठार की पीड़ा को कोई सुनता क्यों नहीं. (अभी कुछ ही दिनों पहले इनकी कविताओं की एक सी. डी. रिलीज़ हुई है - 'पठार को सुनो'.)

बहरहाल, प्रस्तुत संकलन से विद्याभूषण की कविताओं की कुछ बानगी देखें और इन कविताओं के मन-मिज़ाज को पढ़ें. संस्कृत की एक प्रसिद्ध उक्ति है कि प्रभु, सारे कष्ट मेरे भाग्य-भाल पर लिख दो, किंतु 'अरसिकेषु कवित्व निवेदनं/शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख!' उर्दू में भी तो कहा गया है- 'फूल की पत्ती से कट सकता है हीरे का जिगर/मर्दे जादां पर कलामे-नर्मो-नाज़ुक बेअसर!' इसे विद्याभूषण यों कहते हैं - 'कविता/एलार्म घड़ी नहीं है दोस्तो/जिसे सिरहाने रखकर तुम सो जाओ/ और यह नियत वक़्त पर तुम्हें जगाया करे. ....*'हां, किसी चोट खायी जगह पर/ दर्दनाशक लोशन की राहत/दे सकती है कभी-कभी/...कविता ऊसर खेतों के लिए/हल का फाल बन सकती है/ फ़रिश्ते के घर जाने की ख़ातिर/नंगे पावों के लिए/जूते की नाल बन सकती है/समस्याओं के बीहड़ जंगल में/एक बाग़ी संतान बन सकती है/और किसी मुसीबत में/अगर तुम आदमी बने रहना चाहो/तो एक उम्दा ख़्याल बन सकती है !'* मगर आदमी, आदमी बने रहना चाहे तो सही !

कवि के शब्दों में पठार का दर्द और कवि पर उस पीड़ा की प्रतिक्रिया को जानना-समझना चाहें तो 'सृजन और प्रसव पीड़ा' शीर्षक कविता पढ़ें - *'...चोर-सिपाही खेल से उकताये बच्चे/जब भूख से बेहाल/रोटी पकने का इंतज़ार करते हैं/मेरी कविता की प्रसव-पीड़ा/शुरू हो जाती है. ...मेहनतकश रेजायें/ दिहाड़ी गिनने से पहले/सरेशाम जब थके चेहरों को/अंजुरी भर पानी से चमका लेती हैं/ढीले जूड़ों पर कंघा फिरा लेती हैं/फिर सीधी तनी पीठ/शहर के सीमांत टोलों को जाती/सड़कों पर/ अपनी रफ़्तार तेज़ कर देती हैं/ कोई पहाड़ी गीत छेड़ देती हैं रस्ते में/तब मुझमें कोई शिशु स्पंदित होने लगता है. ...गल्ला मंडी की जाम सड़कों पर/ठेलों पर हिमालय खींचती/मज़बूत काठी/जब याचना में झुकती है/सख़्त पुट्ठे/अभाव में लुंज पड़ने लगते हैं/.... तब कुछ कचोटने लगता है मुझको/और सिसकियां लेती है भाषा/ प्रसव-पीड़ा से बेचैन होकर...'*

कुल सत्तावन कविताओं के इस संचयन से नमूने की कौन-सी पंक्तियां आपको सुनाऊं और किन्हें छोड़ूं ! मुश्किल है. सिर्फ़ एक और कविता की कुछ पंक्तियां सुनाकर मैं ओट होता हूं, इस संकलन और आपके बीच से, और आपको आमंत्रित करता हूं स्वयं इन कविताओं को पढ़ने के लिए - *'इस बड़े होते*

हुए शहर में/मेरी नन्ही बिटिया के कई सवाल/बड़े हुए हैं/कि तमाम बच्चों को/खिलौना, टॉफियां या स्लेटें/मुफ्त क्यों नहीं मिल जाती ?/ कि महरी के मुर्दा शौहर के लिए/चंदा क्यों उठाया गया था ? कि नानी के गांव में दंगा क्यों हुआ ?/ कि वे तमाम कारीगर कहां रहते हैं / जिन्होंने शहर के सारे हवादार/और खूबसूरत घर बनाये हैं...?'

जी नहीं मान रहा. एक और कविता की दो चार पंक्तियां सुनेंगे ? *'जब से शहर बड़े हुए हैं/आदमी की तकलीफें बड़ी हुई हैं/कामगारों के जुलूस बड़े हुए हैं/लाठियों की क़िस्में बड़ी हुई हैं/ घायल बदन में दर्द बड़ा हुआ है. ...जब से शहर बड़े हुए हैं/ क़तारें लंबी हुई हैं. जीभ दुगनी हुई है/भूख चौगुनी हुई है/ वहशियत सौगुनी हुई है/और बनियेपन का कोई हिसाब नहीं.'*

नीचे करम टोली, रांची ८३४ ००८

राष्ट्र भाषा हिंदी के नाम एक शाम

संजीव वर्मा 'सलिल'

रस्ते में हो गयी शाम (संस्मरण) : **प्रबोध कुमार गोविल**
प्रकाशक : उद्योग नगर प्रकाशन, ६९५ न्यू कोट गांव, जी. टी.रोड, गाज़ियाबाद (उ. प्र.). मू. : १००/- रु.

कल आज और कल में सामंजस्य स्थापित कर अतीत से भविष्य तक वैचारिक आवागमन जिन्हें सहज साध्य है, जो न तो व्यक्तियों की उपलब्धि से अभिभूत होते हैं, न ही किसी को कम आंकते हैं, जो सहमति या प्रशंसा से फूलकर कुप्पा नहीं होते न असहमति या आलोचना से नाराज़ - ऐसे ही लोग घटनाओं या व्यक्तियों का सम्यक विश्लेषण कर पाठकों के लिए कुछ परोस सकते हैं. प्रबोध गोविल एक ऐसे कलाकार का नाम है जो उपन्यास, कहानी, कविता के बाद अब संस्मरण अपनी अंजुरी में भरकर सरस्वती को समर्पित कर रहे हैं.

इस संग्रह के २६ संस्मरण प्रबोध की विशिष्ट शैली तथा अवलोकन-आकलन क्षमता के उदाहरण हैं. कई प्रसंगों में अनेक बहुचर्चित व्यक्तियों से संबंधित घटनाओं का उल्लेख है. इनमें चित्रपट की कथा की तरह प्रबोध गोविल की विचार दृष्टि का अविछिन्न प्रवाह है. व्यक्ति पात्रों की तरह आकर अपनी भूमिका निभाकर जाते हुए प्रतीत होते हैं. किसी नाटक के सूत्रधार की तरह प्रबोध यदा-कदा अपना मंतव्य भी कहते चलते हैं. सम्यक् दृश्य विधान का संयोजन इन संस्मरणों को रोचकता व स्मरणीयता देता है. 'चोरी कैसी, चोर कौन'.... संस्मरण में तस्करी का दृश्य वर्णन प्रेमचंद के दृश्य विधान का स्मरण कराता है.

प्रबोधजी के इन संस्मरणों में निबंध, रिपोर्ताज, आलेख के भी लक्षण हैं. इन्हें किताबी तौर पर किसी एक विधा में सीमित नहीं किया जा सकता किंतु व्यवहारतः विधा वैविध्य ने इन्हें रोचकता, पठनीयता तथा ग्रहणीयता के तत्वों से संपन्न किया है. डॉ. महावीर कृष्ण जैन, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, रेलयात्रा, बच्चनजी, गोविंद मिश्र, शंकर दयालजी, सूर्यबाला, विष्णुप्रभाकरजी आदि से संबंधित प्रसंग जीवंत बन पड़े हैं. हिंदी को लेकर भी अनेक प्रसंगों में प्रबोध ने पूरी तरह बेलाग-बेलौस होकर अपनी बात कही है. इस कृति में अन्य प्रसंगों व व्यक्तियों के साथ-साथ विचार तथा व्यक्ति के तौर पर जाने-अनजाने प्रबोध ने स्वयं को भी उद्घाटित किया है - यह इस कृति का वैशिष्ट्य है.

सं. 'नर्मदा', २०४, विजय एपार्टमेंट, नेपियर टॉउन, १२९६, सुभद्रा चौहान वार्ड, जबलपुर ४६२००१

जागरूक संवेदना की कविताएं

गोवर्धन यादव

अभिलाषा (काव्य संग्रह) : **कृष्ण कुमार यादव**
प्रकाशक : शैवाल प्रकाशन, दाऊदपुर, गोरखपुर-२७३००१.
मूल्य : १६०/- रु.

मनुष्य को अपने व्यक्तिगत संबंधों के साथ ही जीवन के विविध क्षेत्रों से प्राप्त हो रही अनुभूतियों का आत्मीकरण तथा उनका उपयुक्त शब्दों में भाव तथा चिंतन के स्तर पर अभिव्यक्तीकरण ही वर्तमान कविता का आधार है. जगत के नाना रूपों और व्यापारों में जब मनीषी को नैसर्गिक सौंदर्य के दर्शन होते हैं तथा जब मनोकांक्षाओं के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करने में एकात्मकता का अनुभव होता है, तभी यह सामंजस्य सजीवता के साथ समकालीन सृजन का साक्षी बन पाता है. युवा कवि एवं भारतीय डाक सेवा के अधिकारी कृष्ण कुमार यादव ने अपने प्रथम काव्य संग्रह 'अभिलाषा' में अपने बहुरूपात्मक सृजन में प्रकृति के अपार क्षेत्रों में विस्तारित आलंबनों को विषयवस्तु के रूप में प्राप्त करके हृदय और मस्तिष्क की रसात्मकता से कविता के अनेक रूप बिंबों में संजोने का प्रयास किया है. मुक्त छंद के इस कविता संग्रह में कुल ८८ कविताएं संकलित हैं. कृष्ण कुमार ने अपने इस संग्रह में विषय-विशेष की कविताओं को अलग-अलग खंडों में रखा है. यथा - मां, प्रेयसी, नारी, ईश्वर, बचपन, एकाकीपन, दफ़्तर, प्रकृति, मूल्य एवं विसंगतियां, संबंध, समकालीन और विविध. इन विषयों को उठाकर कवि ने समग्रता का प्रमाण देने के साथ-साथ कालखंड को भी प्रस्तुत करने का व्यापक प्रयास किया है. बक़ौल गोपालदास नीरज, कृष्ण कुमार व्यक्तिनिष्ठ नहीं समाजनिष्ठ कवि हैं जो वर्तमान परिवेश की विद्रूपताओं, विसंगतियों, षड़यंत्रों और पाखंडों का बड़ी मार्मिकता के साथ उद्‌घाटन करते हैं. 'अभिलाषा' का संज्ञक संकलन संस्कारवान कवि का इन्हीं विशेषताओं से युक्त कवि कर्म है, जिसमें व्यक्तिगत

संबंधों, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समस्याओं और विषमताओं तथा जीवन मूल्यों के साथ हो रहे पीढ़ियों के अतीत और वर्तमान के टकरावों प्रकृति के साथ पर्यावरणीय विक्षोभों का खुलकर भावात्मक अर्थ शब्दों में अनुगुंजित हुआ है. परा और अपरा जीवन दर्शन, विश्व बोध से उपजी अनुभूतियों, बाल विमर्श, स्त्री विमर्श एवं जड़ व्यवस्था व प्रशासनिक रवैये ने भी कवि को अनेक रूपों में उद्वेलित किया है. इन उद्वेलनों में जीवन सौंदर्य के सार्थक और सजीव चित्र शब्दों में अर्थ पा सके हैं.

कृष्ण कुमार यादव ने अपने संकलन में कविता को परिभाषित किया है - कविता है वेदना की अभिव्यक्ति/कविता है एक विचार/कविता है प्रकृति की सहचरी/कविता है क्रांति की नज़ीर/कविता है शोषितों की आवाज़/कविता है रसिकों का साज़/कविता है सृष्टि और प्रलय का निर्माण/कविता है मोक्ष और *निर्वाण/कभी यथार्थ, तो कभी कल्पना के आगोश में/कविता इस ब्रह्मांड से भी आगे है.* निश्चिततः ये पंक्तियां कवि की तमाम कविताओं की भाव-भूमि का ख़ुलासा करने में नितांत सक्षम हैं. 'अभीलाषा' का प्रथम खंड 'मां' को समर्पित है. मां के ममत्व भरे भाव की स्नेहिल अभिव्यक्ति पर कवि ने कुल पांच कविताएं लिखी हैं, जिसमें ममता की अनुभूति का पवित्र भाव - वात्सल्य, प्यार और दुलार के विविध रूपों में कथन की मर्मस्पर्शी भंगिमा के साथ कथ्य को सीधे-सीधे पाठक तक संप्रेषित करने का प्रयत्न किया है. कवि की जीवन स्मृतियों में मां अनेक रूपों में प्रकट होती है - कभी पत्र में उत्कीर्ण होकर, तो कभी यादों के झरोखों से झांकती हुई बचपन से आज तक की उपलब्धियों के बीच एक सफल पुत्र को आशीर्वाद देती हुई. किसी निराश्रिता, अभाव ग्रस्त, क्षुधित मां और संतति की काया को भी कवि की लेखनी का स्पर्श मिला है, जहां मजबूरी में छिपी निरीहता को भूखी कामुक निगाहों के स्वार्थी संसार के बीच अर्धानावृत्त आंचल से दूध पिलाती मानवी को अमानवीय नज़रों का सामना करना पड़ रहा है. कवि की 'मां' के प्रति भावनाएं अभ्यर्थना और अभ्यर्चना बनकर कविता का शाश्वत शब्द सौंदर्य बन जाती हैं. इन पंक्तियों को देखें - 'मेरा प्यारा सा बच्चा/गोद में भर लेती है बच्चे को/चेहरे पर नज़र न लगे/माथे पर काजल का टीका लगाती है/कोई बुरी आत्मा न छू सके/बांहों में तावीज़ बांध देती है'. कवि की मां को समर्पित एक अन्य रचना की पंक्तियां हैं - *'जो बच्चे अच्छे काम करते हैं/उनके सपनों में परी आती/और देकर चली जाती चाकलेट/मुझे क्या पता था/वो परी कोई और नहीं/मां ही थी.'*

अपनी वय के अनुसार बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है वह नारी और प्रेयसी के विभिन्न रूपों को महसूस करता है, यहां तक कि प्रकृति भी उसे प्रेयसी लगती है. कवि ने बड़ी ही सहजता और ख़ूबसूरती के साथ भावों को अभिव्यक्त करते हुए अपने प्रकृति प्रेमी होने का प्रमाण दिया है. कवि ने प्रेम व प्रेयसी पर कुल दस कविताएं लिखी हैं - *'सद्यःस्नात सी लगती हैं/हर रोज़ सूरज की किरणें/आगोश में भर शरीर को/दिखाती हैं अपनी अल्हड़ता के जलवे/और मजबूर कर देती हैं/अंगड़ाइयां लेने के लिए/मानो सज धज कर/तैयार बैठी हों/अपना कौमार्यपन लुटाने के लिए.'* कवि की क़लम सती प्रथा जैसी कुरीति पर चली है तो नारी अधिकारों की मांग के बहाने स्त्री विमर्श को भी उसने छुआ है. 'बेटी के कर्तव्य' कविता की इन पंक्तियों पर ग़ौर करें - *'पर यह क्या/बेटी तो कर्तव्यों के साथ/अपने अधिकार भी पूछ बैठी/पर मां उसे कैसे समझाये/उसने तो इस शब्द का/अर्थ ही नहीं जाना था/पति ने जो कह दिया/उसे पूरा करना ही/अपना जीवन समझ बैठी/फिर कैसे समझाये उसे/अधिकारों का अर्थ.'*

कृष्ण कुमार यादव की कविताओं में परा और अपरा जीवन दर्शन की भी चर्चा की गयी है. ईश्वर की कल्पना मनुष्य को जब मिली होगी, उसे आशा का आस्थावान विश्वास भी मिला होगा. कवि का मानना है कि धर्म-संप्रदाय के नाम पर घरौंदों का निर्माण न तो उस अनंत की आराधना है, और न ही इनमें उसका निवास है. कवि ने ईश्वर के लिए लिखा है - *'मैं किसी मंदिर-मस्जिद गुरुद्वारे में नहीं/मैं किसी कर्मकांड और चढ़ावे का भूखा नहीं/नहीं चाहिए मुझे तुम्हारा ये सब कुछ/मैं सत्य में हूं, सौंदर्य में हूं, कर्तव्य में हूं/परोपकार में हूं, अहिंसा में हूं, हर जीव में हूं/अपने अंदर झांको, मैं तुममें भी हूं/फिर क्यों लड़ते हो तुम/बाहर कहीं ढूंढ़ते हुए मुझे.'* कवि ईश्वर की खोज करता है अनेक प्रतीकों में, अनेक आस्थाओं में और अपने अंदर भी. वह भिखमंगों के ईश्वर को भी देखता है और भक्तों को भिखमंगा होते भी देखता है.

बाल विमर्श कवि की कुछ कविताओं का प्रमुख तत्व है, जिनमें बच्चों के दर्द को मार्मिकता के साथ उभारा गया है. जूतों में पॉलिश करता बच्चा, दंगों में मृत मां के स्तनों को मुंह लगाये बच्चा, क्लोन, दुधमुंहा बच्चा और धर्म के खांचों में बंटते बच्चों पर लिखी कविताएं कवि की बाल मनोविज्ञान पर गहरी पकड़ की परिचायक हैं - *'ख़ामोश व वीरान सी आंखें/आस-पास कुछ ढूंढ़ती हैं/पर हाथ में आता है/सिर्फ़ मांस का लोथड़ा/मां की छाती समझ/वह लोथड़े को भी मुंह/लगा लेता है/मुंह में दूध की बजाय/ख़ून भर आता है/लाशों के बीच/ख़ून से सना मुंह लिये/एक मासूम का चेहरा/वह इस देश का भविष्य है'.*

कवि की रचनाओं का फलक अत्यंत व्यापक है. वर्तमान समय की ग्राम्य और नगर जीवन स्थितियों में पनप रही आपा-धापी का टिक-टिक-टिक शीर्षक से कार्यालयी दिनचर्या, अधिकारी और कर्मचारी की जीवन दशाएं, फाइलें, सुविधा शुल्क तथा फ़र्ज़ अदायगी शीर्षकों में निजी अनुभव और दैनिक क्रियाकलापों का स्वानुभूत प्रस्तुत किया गया है. नैतिकता और जीवन मूल्य कवि के संस्कारों में रचे बसे लगते हैं. उसे अंगुलिमाल के रूप में

अत्याचारी व अनाचारी का दुश्चरित्र - चित्र भी याद आता और बुद्ध तथा गांधी का जगत में आदर्श निष्पादन तथा क्षमा, दया, सहानुभूति का मानव धर्म को अनुप्राणित करता चारित्रिक आदर्श भी नहीं भूलता. वर्तमान समय में मनुष्य की सदवृत्तियों को छल, दंभ, द्वेष, पाखंड और झूठ ने कितना ढक लिया है, यह किसी से छिपा नहीं हैं. इन मानव मूल्यों के अवमूल्यन को कवि ने शब्दों में कविता का रूप दिया है. कवि शहरी परिवेश के बावजूद गांव एवं उससे जुड़ी स्मृतियों को विस्मृत नही करना चाहता. गांव, की गलियां, पेड़, किसान, खेत, मेड़, मिट्टी, बादूल, गौरैया, तितलियां, संगी-साथी इत्यादि कवि की कविताओं में सहज ही उभर आते हैं - खो जाता हूं उस सांधी मिट्टी में/वही गलियां, वही नीम, वही मां, वही प्यार/शायद दूर कहीं कोई पुकारता है मुझे/

यद्यपि ग्राम्य जीवन से संबंधित अनेकों कविताएं पूर्ववर्ती कवियों द्वारा लिखी गयी हैं मगर यहां पर साम्राज्यवादी ताक़तों से टक्कर लेती एक ग्रामीण महिला की सोच को कवि की चौंकाने वाली पंक्तियां माना जा सकता है - गांव की एक अनपढ़ महिला/ने मुझसे पूछा/सुना है, अमरीका ने/आटा चक्की का पेटेंट/करा लिया है/ऐसा कैसे हो सकता है/यह तो हमारे पुरखों की अमानत है.

कृष्ण कुमार यादव ने 'अभिलाषा' में कविता को वस्तुमत्ता तथा समग्रता के बोध से साधारण को भी असाधारण के अहसास से यथार्थ दृष्टि प्रदान की है, जो प्रगतिशीलता चेतना की आधुनिकता बोध से युक्त चित्तवृत्ति का प्रतिबिंब है. इसमें कवि मन भी है और जन मन भी. मनुष्य इस संसार में सामाजिकता की सीमाओं में अकेला नहीं रहता. उसके साथ समाज रहता है.

अतः अपने संपर्कों से मिली अनुभूती का आभ्यांतरीकरण करते हुए कवि ने अपनी भावना की संवेदनात्मकता को विवेकजन्य पहचान भी प्रदान की है. मन के सुकुमार भावों के स्पंदन, कविता की किलकारियों के रूप में स्वतः ही गूंज उठे हैं. कहीं कोई कृत्रिमता नही, कहीं कोई मलाल नहीं और न ही दायित्व-बोध और कवि कर्म में पांडित्य प्रदर्शन का कोई भाव परिलक्षित होता है. 'अभिलाषा' संग्रह की कविताएं वाक़ई एक नये पथ का निर्माण करती हैं, जहां अत्यधिक उपमानों, भौतिकता, व दुरूहता की बजाय स्वाभाविकता, समाजनिष्ठ एवं जागरूक संवेदना है, जो कि कविता की लय बचाने हेतु ज़रूरी है. कविता समकालीन लेखन और सृजन के समसामायिक बोध की परिणति है सो 'अभिलाषा' की रचनाएं भी इस तथ्य से अछूती नही है.

वैश्विक जीवन दृष्टि, आधुनिकता बोध तथा सामाजिक संदर्भों को विविधता के अनेक स्तरों पर समेट प्रस्तुत संकलन के अध्ययन से आभासित होता है कि कवि को विपुल साहित्यिक ऊर्जा संपन्न कवि हृदय प्राप्त है, जिससे वह हिंदी भाषा के वांगमय को स्मृति प्रदान करेंगे. निश्चिततः कृष्ण कुमार यादव का यह पहला काव्य संग्रह पठनीय एवं संग्रहणीय है.

१०३, कावेरी नगर, छिंदवाड़ा (म. प्र.) ४८०००१

ग़ज़लों में ढलता राष्ट्रीय क्रोध

जयनारायण

दूर तक सहराओं में (ग़ज़ल-संग्रह) : नूर महम्मद 'नूर'
प्रकाशक : मि. जे. पब्लिकेशन, १४, दुर्गादास लेन, कोलकाता-७०००२३. **मूल्य** : ८५/- रु.

बात क्यों न पहले पुस्तक के नाम से ही शुरू की जाये. 'दूर तक सहराओ में' - सहरा यानि रेगिस्तान. सहरा यानि भूख, प्यास और भटकन. सहरा यानि सिर पर तपता सूरज और पांवों के नीचे तपती रेत और छाया के लिए भटकता इंसान. कुछ यही प्रतीक बनता है सहरा से. वर्तमान समय के लिए अगर हम कोई मुकम्मल प्रतीक खोजना चाहें तो हमें सहरा से ज़्यादा कोई दूसरा उपयुक्त शब्द नहीं मिलता.

पूरा देश सहराओं मे तब्दील हो चुका है. इंसान से उसके जीने का अधिकार छीना जा रहा है. यह वैश्वीकरण, बाज़ार वाद और उत्तर-आधुनिकता का युग है, जहां विचारों के अंत की घोषणा हो चुकी है और राजनीति का अपराधीकरण अपने चरम पर है. ऐसे खूंखार समय में इंसान किसके सहारे जीये ? यही चिंता आज हर सोचने-समझनेवाले आदमी को बेचैन कर रही है. कवि, कथाकार और ग़ज़लकार नूर मुहम्मद 'नूर' भी अपने सद्यः प्रकाशित ग़ज़ल-संग्रह 'दूर तक सहराओं में' में इसी बेचैनी के साथ प्रकट होते हैं.

ग़ज़लकार जानता है कि देश की यह जो हालत है तेज़ी से रेगिस्तान में बदलने की, आदमी से सब कुछ छीन लेने की, उसके पीछे कौन-सी ताक़तें हैं. वह कहता है -

"वह जिसे भेजा गया था शहरे दिल्ली की तरफ़,
ढूंढ़ती है क़ौम पर उसका पता कोई नहीं."

इस शेर के माध्यम से ग़ज़लकार साफ़-साफ़ उंगली उठता है उन जन-प्रतिनिधियों की तरफ़, जो मौसमी परिंदों के समान हर चुनाव के समय दिखते हैं और चुनकर जाने के बाद गूलर के फूल हो जाते हैं. दिल्ली जाकर दायें और बायें का भेद मिट जाता है. वामपंथ और दक्षिणपंथ आज कहने को अलग-अलग हैं, चरित्र दोनों का एक-सा ही है अर्थात जन-विरोधी. वह कहता है -

"दाहिने-बायें नहीं, अब झूमकर सीधा चलो,
दाहिने-बायें में अब है रास्ता कोई नहीं."

मज़हब की सियासत करने वालों से ग़ज़लकार हमें आगाह करता है -

"मंदिर-मस्जिद की चक्की में पीस दिया घरवालों को,
जाने कितने ख़्वाब चढ़ गये भेंट निगोड़े दंगों की."

वह इस स्थिति के लिए ज़िम्मेदार लोगों से हमें सावधान करता है-

"अब ये करतब भी, करिश्मा भी दिखाओ लोगों,
देश को देश के लोगों से बचाओ लोगों."

तथा लोगों को निहित स्वार्थों की साज़िशों को समझने की गुज़ारिश भी करता है -

"गांव-नगर में क्यों होती अक्सर ख़ूनी बरसात, मियां,
अब कब तक बालिग़ होओगे, समझोगे ये बात, मियां."

गोपीचंद नारंग की इस उक्ति में कि ग़ज़ल के प्रत्येक शेर में एक कहानी होती है, नूर के प्रत्येक शेर में एक कहानी है, हिंदुस्तान की कहानी, दर्द, बेचैनी और शोषण की कहानी, गैर-बराबरी और बेईमानी की कहानी, एक तरफ़ ज़मींदोज़ होती झोपड़ियां और दूसरी तरफ़ समृद्धि की उठती मीनारें.

नूर के प्रस्तुत संग्रह में आरंभिक दौर की ग़ज़लें हैं, फिर भी ग़ज़लों को पढ़ते समय नहीं लगता कि इनमें कच्चापन है. नूर अपने शिल्प में पक ढाये (परिपक्व) हैं और कथ्य में सोजहग (पूरी) बात कहते हैं. कहने की भाषा कहीं आत्मीय, कहीं व्यंग्यपूर्ण, कहीं झुंझलाहट से भरी, कहीं चुनौती देती तो कहीं हमें चेताती है. वे आज के माहौल से आने वाले कल का अनुमान लगा लेता है और हमें सावधान करते हुए कहते हैं -

"ये जो हल्का-सा अंधेरा है, ग़नीमत जानो,
दिन अभी और अभी और भी काले होंगे."

वह आने वाले दिनों को काला बनाने वाली ताक़तों को भी आगाह करना चाहते हैं -

"आज लाचार हैं, फैले हैं जो तेरे आगे,
कल इन्हीं हाथों में ख़ंजर कहीं झाले होंगे."

समाज में बढ़ रही असमानता पर ग़ज़लकार हैरत जताता है -

"लगे ज़ईफ़ जवानी में क्यों मेरी दुख़्तर,
तुम्हारी मां पे अभी भी शबाब, क्या मतलब ?"

यह जो आज का हिंदुस्तान है, इसके वर्तमान से शाइर नाख़ुश है. वह इस हिंदुस्तान में बदलाव के लिए बेचैन है -

"आपको फ़िक्र है, कैसे अदब में जमें,
फ़िक्र मुझको है रद्दोबदल के लिए."

ग़ज़लकार अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखता है - 'बातों-विचारों को शेरों की शक्ल में जो मैंने कहा, तो सुना-सराहा जो ज़रूर गया, लेकिन गुना नहीं गया और अमल में नहीं लाया गया, तमाम इशारे अनसुने-अनदेखे रह गये, शायद विचार और इशारे दोनों ही कमज़ोर थे और अनाकर्षक भी.'

ग़ज़लकार की अपने पाठकों से यह शिकायत कोई नयी और अकेली नहीं. प्रत्येक रचनाकार की यही शिकायत रही है. रचनाकार सोचता है कि उसके लिखे को पढ़कर पाठक क्रांति कर देगा, मगर ऐसा होता नहीं. अगर ऐसा होता तो बहुत पहले क्रांति हो गयी होती. अतएव नूर को अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों से सीख लेकर धैर्य धारण कर लेखन-कर्म जारी रखना चाहिए.

नूर को संदेह है कि उनके विचार और इशारे 'कमज़ोर और अनाकर्षक' होंगे, पर वैसी बात नहीं. संग्रह की ग़ज़लें अपने कथ्य और शिल्प में परिपक्व व पूर्ण हैं. नूर अपने इशारों में संदेह के लिए कोई गुंज़ाइश नहीं छोड़ते. उनकी ग़ज़लें इशारे नहीं ललकार हैं. इतनी सीधी-साधी मगर कड़कदार भाषा में बात करने वाले हिंदी में बहुत कम लोग हैं.

नूर अपनी इसी भूमिका में लिखते हैं - 'मैं जुड़ा भी अपने-जैसे शून्य त्यागियों से ही था. वे लोग जिनकी मेहनत और मुहब्बत से, जिनके ख़ून पसीने की ख़ुशबू और रंगत से एक मुल्क राष्ट्र बनता है, मैं उनके इसी राष्ट्रीय क्रोध को शेरों में ढाल रहा था, क्रोध जो अभाव, असमानता और अन्याय से पैदा होता है.' यही कारण है कि नूर की ग़ज़लों में आज का हिंदुस्तान बोलता है. वह अपने चिंतन, अपने विचार अपने चारों ओर फैली तंगहाली और बेबसी से बेईमानी नहीं कर सकता -

"आदमी हूं, किस तरह लफ़्ज़ों में शैतानी भरूं,
कम-से-कम मुझमें अभी इतनी शरम बाक़ी तो है."

नूर के इस ग़ज़ल-संग्रह से मेरे जैसे पाठकों को कुछ शिकायतें भी हैं. मसलन, जगह-जगह शब्दों के ग़लत विवरण (हिज्जे) का छपना, ऊपर की पंक्ति के कुछ शब्द नीचे की पंक्ति में छप जाना. इससे पढ़ने में व्यवधान तो पड़ता ही है, अर्थ-ग्रहण में दिक़्क़तें पेश आती हैं. उर्दू के कठिन शब्दों का व्यवहार भी एक बाधक तत्व है. यो तो कठिन शब्दों के हिंदी अर्थ दिये गये हैं, मगर अभी बहुत-से शब्द छूट गये हैं, जिनके अर्थ भी दिये जाने चहिए थे. इससे पाठक को भ्रम होता है कि ये ग़ज़लें पहले उर्दू में लिखी गयी होंगी, फिर इन्हे सुविधा से देवनागरी में लिप्यांतर कर लिया गया है. नूर की इस कमज़ोरी को हम समझ सकते हैं. नूर चूंकि उर्दू, अरबी और फ़ारसी के भी अच्छे जानकार हैं, अतः चाहकर भी इससे छुटकारा नहीं पा सकते. (अगर नूर भाषा की इस दुरूहता से बच सकें तो भाषा को एक नया मिज़ाज विकसित करने के लिए बधाई के पात्र भी हैं.)

बहरहाल, इतने दमदार और 'राष्ट्रीय क्रोध' को ग़ज़लों में ढालने के लिए नूर बधाई के पात्र हैं. अंत में इन्हीं के भोजपुरी ग़ज़ल के एक शेर से इस समीक्षा का समापन करना चाहूंगा-

"ऊ जे मर-मर के बोअलस गोहूं,
ओकरे घर से पिसान गायब बा."

एच-२, टैगोर पार्क (मेन रोड),
नस्करहाट, कोलकाता ७०० ०३९

अब मैं चौंकता नहीं हूं !

डॉ. किशोर काबरा

अब मैं चौंकता नहीं हूं
क्योंकि कोड़ियों के मोल बेच दी है मैंने सभी जिज्ञासाएं,
क्योंकि उत्सुकता को मैंने नियति के सलीब पर चढ़ा दिया है.
आचरण के सिरहाने दुराचरण की सेंध लगती देखकर
मैं भौंकता नहीं हूं,
क्योंकि मैं चौंकता नहीं हूं.
अब अंधेरा होता है, रात नहीं होती,
अब पानी गिरता है, बरसात नहीं होती.
झोपड़ी के इकलौते उजाले को तुम आकाशगंगा में बहाओ
या गंदे नाले में,
मैं रोकता नहीं हूं,
क्योंकि मैं चौंकता नहीं हूं.

लंगड़ा व्यक्तित्व

लंगड़ा व्यक्तित्व
पैर न होने का बोझ
हमेशा अपने सिर पर ढोता है,
वह पैर ही ओढ़ता है, पैर ही बिछाता है.
अपने तलुये छूने
तथा दूसरों के तलुये सहलाने के लिए
जब-जब भी वह अपने हाथ नीचे झुकाता है,
उसे हर दो पैरों वाला आदमी
हज़ार पैरोंवाला सरीसृप लगता है,
जिसके रेंगने की लिजलिजी सरसराहट से
एक कंपकंपी के साथ
पैर ही पैर उग आते हैं, लंगड़े के कंटीले वक्ष पर.
लहूलुहान हो जाता है
पैर न होने का अहसास.
फिर,
पैर न होने के अहसास को
पैर होने के आभास में बदलने के लिए
वह बैसाखी की जगह तेग उठाता है,
तलवार उठाता है
और तैमूर बनकर कत्लेआम करता है,
फिर,
सब पैरवालों के कटे सिरों को हवा में उछालता है
किरच पर झेलता है,
और अपने लंगड़े पैरों से उन्हें कुचलता हुआ
अट्टहास करता है,
और कहता है :
'ऐ सिरवालो !
देखो, देखो ! मेरे भी पैर हैं !'

१८२१, गुजरात हाउसिंग, चांदखेड़ा,
अहमदाबाद - ३८२४२४

मेघ

शंभु बादल

मेघ !
अपने सीने में
बिजली का ताप छिपाये
क्यों सिसक रहे हो ?
देखो, धरती का आंचल सराबोर है,
क्या लुटेरों ने
तुम्हारी सारी फसलें काट ली हैं ?
या हाथियों ने
घर उजाड़,
बच्चे को कुचल दिया है ?
या बमबारी से
परिवार तबाह हुआ है,
या ऐय्याश फिल्मी सितारे ने
अपनी क़ीमती कार
तुम्हारे फुटपाथी भाई पर
दौड़ा दी है ?
प्यारे मेघ,
सिसकने से क्या होता है !
वर्षा को ही देखो
जीवन-भर रोती रही
क्या मिला ?
मिट जाने की नियति !
भागते रहने की कायरता !
क्या संघर्ष के साथ मुस्काने
जीने का नाम नहीं जीवन ?
क्या उमड़ता-घुमड़ता
उन्मुक्त विचरता नहीं मेघ ?
प्यारे मेघ,
प्रफुल्ल बच्चे की तरह
जब खिलखिलाकर हंसते हो
गतिशील नदी की तरह
लगातार गीत गाते हो,
कितने अच्छे लगते हो !

संपादक 'प्रसंग', सूरज-घर, जबरा रोड,
कोर्रा, हजारीबाग (झारखंड) ८५४१०८

इंसान नहीं हैं हवाएं

प्रबोध कुमार गोविल

हवाएं बहती हैं एक दिशा से
दूसरी दिशा तक,
इंसान की तरह
हवाएं गर्म भी होती हैं,
ठंडी भी.
इंसान की तरह
हवाएं ख़ुश्क भी हैं,
भीगी-भीगी भी
इंसान की तरह,
फिर भी इंसान नहीं हैं हवाएं....
क्योंकि हवाओं को
हर सुबह दाना-पानी ढूंढ़ने के लि
घर से दूर नहीं जाना पड़ता
अपने बच्चों को छोड़ कर
क्योंकि....
वहीं है उनका दाना पानी भी
जहां हैं हवाएं !
हां, इस धरती के
भाग्य से कुछ इंसान ऐसे भी हैं
जिनके घरों की कंदराओं में ही
भरा है भरपूर दानापानी,
यह बात और है कि
रह नहीं पाते वे इंसान बनकर
हवाएं कम से कम
रह तो पाती हैं हवाएं बनकर,
बहती, उड़ती, खिलखिलाती...
इंसान नहीं हैं हवाएं
बेहतर हैं वे
कि जब चलती हैं
आंधी-तूफ़ान की तरह
तब उड़ा देती हैं
दाना-पानी अपना भी
दूसरों के लिए
कि
इंसान नहीं हैं हवाएं !

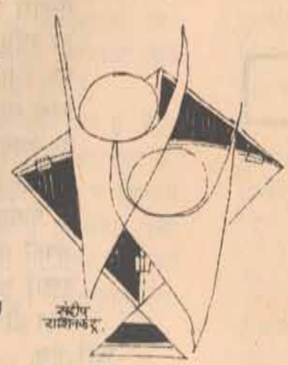

६, विवेकानंद आवास,
वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान) ३०४०२२

कम है संभावना

केशव शरण

उत्तर आधुनिकता से दूर वह
काफ़ी पिछड़ा इलाक़ा है
अभी वहां माओवाद पहुंचा है.
बंदूक की व्यर्थता का विचार
बाद में पहुंचेगा
सर्व असमर्थता और परम संतुष्टि का भाव
बाद में पहुंचेगा
जब क्रांति की हवा निकल जायेगी गुब्बारों की तरह
जब नये-नये दमन चक्र में पीस दिये जायेंगे लोग
और बुद्धि खुल जायेगी
बाज़ारों की तरह
अभी साप्ताहिक हाट लगता है
माओवाद का सपना विराट लगता है
मगर उत्तर आधुनिकता का यथार्थ ही
सबसे पास लगता है
जन समर्थन में
मैं करता हूं कामना
ग़लत निकले मेरा आकलन
झूठी हो मेरी बात
मगर इतिहास देखते हुए
कम है संभावना.

एस २/५६४, सिकरौल, वाराणसी - २.

घर का सपना

ईश्वर सिंह बिष्ट 'ईशोर'

मेरा कहीं कोई घर नहीं है
मैं रोज़ घर बनाता हूं,
घर उनके होते हैं
जिनके लिए घर बनाये जाते हैं.
औरत का घर से वही रिश्ता है
जो ईश्वर का धरती से,
घर के सपने देखना और सोचना
किसे अच्छा नहीं लगता.
हर आदमी को घर बनाकर ख़ुशी मिलती है.
बाहर से सुंदर दिखाई देने वाले घर
अगर नहीं है प्यार तो हैं बेकार
घर से दूर रहकर ही
घर की बहुत याद आती है.

३२, इंदिरा नगर, रतलाम (म. प्र.) ४५७००१

ग़ज़लें

भगवानदास जैन

ज़मी के ख़्वाब रोते हैं करोड़ों की निगाहों में,
फ़रिश्ते आसमां के हैं सभी आरामगाहों में ।
यहां से गुज़रे हैं बेशक़ मुहाज़िर अनगिनत ज़ख्मी,
हैं ख़ूं आलूद नक़्शेपा यहां हर सिम्त राहों में ।
बचा हूं जानलेवा हादसे में क्यूं औ' कैसे मैं,
बहस का मुद्दआ है ये मेरे कुछ ख़ैर ख्वाहों में ।
ख़ुदा जाने कि क्या अंजाम हो अब उन यतीमों का,
चमन के फूल हैं सब आज पत्थर की पनाहों में ।
सज़ा मिलती है लोगों को यहां अब बेगुनाही की,
सियासत आज ख़ुद डूबी है संजीदा गुनाहों में ।
हुकूमत का हमी ने ताज जिनके सर पे रक्खा था,
समझ बैठे हैं वे ख़ुद को वतन के बादशाहों में ।
गुज़रता जा रहा है कारवाने ज़ीस्त सदियों से,
मगर देखा किये हम सिर्फ़ उड़ती ख़ाक राहों में ।
करें फ़रियाद जाकर अब कहां आंसू बहायें हम,
सुनेगा कौन अपनी संगदिल इन बारगाहों में ।
कभी तो देखना पिघलेंगे पत्थर के सनम इक दिन,
है इतना तो असर अब भी दिले शाइर की आहों में ।

मैं बारिश में कोई छप्पर जो टूटा देख लेता हूं,
तो अपने मुल्क का मैं हाले ख़स्ता देख लेता हूं ।
बदन जब कोई सर्दी में ठिठुरता देख लेता हूं,
तो भारत मां को जैसे थरथराता देख लेता हूं ।
पिघल जाता है, मेरा सब गुमां तब मोम के जैसा,
कभी जब अर्श से टूटा सितारा देख लेता हूं ।
ख़ुदाया मैं तेरे दैरोहरम का अब नहीं काइल,
दिले मासूम में तुझको हमेशा देख लेता हूं ।
मरासिम इस ज़माने के सभी अब शक़ की ज़द में हैं,
मैं हर रिश्ते को अब अक्सर सरापा देख लेता हूं ।
इबारत ख़ुश्क आंखों की मैं पढ़कर बारहा यारो,
दिले नाशाद में अश्कों का दरिया देख लेता हूं ।
कहीं मग़रूर हो जाऊं न अपनी इस इमारत पर,
मैं अक्सर कोई मिट्टी का घरौंदा देख लेता हूं ।
कभी जब गिनने लगता हूं मैं ऐबों को हरीफ़ों के,
तो पहले आईने में अपना चेहरा देख लेता हूं ।
पड़ोसी पर कभी उंगली उठाता हूं तो पहले मैं,
ख़ुद अपने घर का बारीकी से नक़्शा देख लेता हूं ।
रहे क़िरदार भी बेदाग़ मेरी ही ग़ज़ल जैसा,
मैं अपने हर अमल को मिस्ले मिस्रा देख लेता हूं ।।

बी-१०५, मंगलतीर्थ पार्क, जशोदानगर रोड, मणीनगर (पू), अहमदाबाद-३८२४४५.

संदीप राशिनकर

फिर न दुनिया में ये बशर होगा,
गर दुबारा जो ये क़हर होगा ।
मुझको लगता नहीं कि धरती पर,
पूरा अपना कभी सफ़र होगा ।
ज़हर खाने की क्या ज़रूरत है,
अब दवा में मिला ज़हर होगा ।
सोचते हैं कभी कभी जुगनू,
कौन बाशिंदा-ए-सहर होगा ।
दस्तकें दे रहे हो तुम बेकार,
बस गया अब तो घर में डर होगा ।

घर होते हुए आज वो ख़ानाबदोश है,
यह शहर उसका आशना फिर भी ख़मोश है ।
पकवान सब रखे हैं दिखावे के मेज़ पर,
मतलब के वास्ते ये बिछा मेज़पोश है ।
हल क्या करें समस्या ख़ुद हैं थके हुए,
इनके शरीर में नहीं बातों में जोश है ।
सब मिल के गंदा करने चली हैं ये मछलियां,
तालाब की सेहत का यहां किसको होश है ।
सब दूध के धुले ही मिलेंगे तुम्हें यहां,
दीवाने की है भूल भोलेपन का दोष है !

११बी, राजेंद्र नगर, इंदौर (म. प्र.) ४५२०१२

लघुकथाएं

बदलाव

✍ बृजेंद्र अग्निहोत्री

प्रतिदिन की तरह मध्यावकाश होते ही कक्षा-सात के सभी विद्यार्थी खेल मैदान की ओर निकल गये. एक बालक थोड़ी देर में अंदर आया. सभी बच्चों के बैग्स चेक करने लगा. एक बैग से ख़ूबसूरत पेन निकाल कर पेन बैग में रखा और कक्षा से निकलकर सभी बच्चों में सम्मिलित हो गया. लंच के पश्चात, जिसका पेन ग़ायब हुआ था, उस बालिका ने अध्यापिका को बताया. तत्पश्चात उस बालिका ने सभी छात्र-छात्राओं के बैग चेक करने प्रारंभ कर दिये.

जब वह बालिका, उस बालक के बैग की जांच कर रही थी तो बालक को ऐसा महसूस हुआ जैसे उसकी सांसें थम गयी हैं, क्योंकि उसके बैग में ही तो उसका पेन था, बालिका ने पेन को देखकर भी अनदेखा कर दिया.

बालिका का बड़प्पन देखकर उस बालक को इतनी शर्म महसूस हुई कि उसने चोरी जैसे निकृष्ट कार्य से हमेशा के लिए पीछा छुड़ा लिया.

ज़िला कारागार के पीछे, मनोहर नगर,
फतेहपुर (उ. प्र.) २१२ ६०१

अपनी-अपनी ख़ुशी

✍ डॉ. योगेंद्र नाथ शुक्ल

"सर पानी... !"

संजू की आवाज़ सुनकर उनके कॉपी जांचते हुए हाथ रुक गये. उन्होंने उस ओर देखा. वह सभी शिक्षकों को पानी पिलाता हुआ, उनकी ओर आ रहा था.

.....मई माह की इस भंयकर गर्मी में इसका ठंडा पानी बहुत राहत पहुंचाता है. मूल्यांकन कक्ष में पानी पिलाने वाले कई लड़के हैं लेकिन एक यही है जिसके गिलास हमेशा चमकते रहते हैं. .. रोज़ तो यह आधे-पौने घंटे में आता था पर आज वह बहुत ख़ुश दिखाई दे रहा है, इसलिए बार-बार चक्कर लगा रहा है. उन्हें आज उसकी चुस्ती-फुर्ती कुछ अधिक दिखाई दी.

वे कभी-कभी उसे चाय के लिए रुपये दे दिया करते और उसके हालचाल पूछ लिया करते तो वह गदगद हो जाया करता.

'गांव के इस लड़के के चेहरे पर कितना भोलापन है !' यह सोचते हुए उन्होंने उसके हाथ से गिलास लिया और पानी पीने लगे.

संजू के आगे बढ़ते ही वे कॉपी जांचने में जुट गये.

अपना काम समाप्त कर उन्होंने कॉपियों का बंडल काउंटर पर जमा कराया. वे बाहर निकल रहे थे तभी उन्हें सामने से संजू आता दिखा. वह गेट पर ड्यूटी दे रहे गार्ड को पानी पिला कर लौट रहा था.

क्षणभर के लिए वह उसके पास रुका फिर बोला, 'सर ! आज मेरी शादी की पहली सालगिरह है इसलिए मैं बहुत ख़ुश हूं.... आज मैंने सभी को ख़ूब पानी पिलाया.... !'

उसके चेहरे पर निश्छल मुस्कराहट के साथ-साथ ख़ुशी का एक विशेष भाव भी विद्यमान था.

संजू जा चुका था, किंतु वे वहीं अवाक् खड़े थे.

३१०, सुदामा नगर, अन्नपूर्णा रोड,
इंदौर (म. प्र.) ४५२ ००९

सितारों का खेल

✍ राजेंद्र निशेश

अकबर अपने समय के महान बादशहा थे और अपनी महानता को दर्शाने के लिए कभी कभी बीरबल से ऐसे प्रश्न भी पूछ बैठते जो सामान्य 'आई-क्यू' रखने वालों के लिए कठिन होते. एक बार वह रात के समय बीरबल के साथ गार्डन में घूमते हुए चांदनी रात का आनंद ले रहे थे. तभी उनकी दृष्टि आकाश पर जा टिकी और सितारों को देखते हुए उन्होंने बीरबल पर प्रश्न दाग दिया-

'बीरबल क्या तुम बतला सकते हो कि आकाश में कितने सितारे हैं ?'

'जहांपनाह, अगर आप बतला दें कि आप के राज्य में अभी तक कितने घोटाले हो चुके हैं तो मैं आकाश में सितारों की गिनती बतला सकता हूं' - बीरबल ने हंसते हुए उत्तर दिया.

बीरबल का उत्तर सुनते ही जहांपनाह को लगा कि इस समय रात की बजाय दिन है और उन्हें दिन में ही सितारे नज़र आ रहे हैं !

सहानुभूति

वह शहर के सबसे अधिक भीड़-भीड़ वाले बाज़ार में घूम रहा था. अचानक उसने देखा कि एक दूकान के बाहर मीठे दूध की ख़ाली बोतलों का एक क्रेट पड़ा है और तीन-चार छोटे-छोटे बच्चे, जिन्होंने चिथड़ेनुमा कपड़े पहन रखे थे, दूकानदार की आंख बचाकर ख़ाली बोतलों मे से लोगों का बचा-खुचा दूध एक बोतल में इकट्ठा करते और आपस में झीना-झपटी करते हुए उसे पी जाते. यह सब देखकर उसका मन ख़राब होने लगा और वह मन ही मन व्यवस्था को गालियां देने लगा. इसी बीच उसे लगा कि उसका अपना हलक सूख रहा है. उसने उसी दूकान से मीठे दूध की एक बोतल ख़रीदी और गटागट पीने लगा. फिर बोतल में थोड़ा सा दूध छोड़कर आगे बढ़ गया.

२६१८, सेक्टर-४० सी, चंडीगढ़-१६००३६.

लेटर बॉक्स

(...कुछ और प्रतिक्रियाएं - पृष्ठ -३ से आगे.)

नायाब पत्रिका "कथाबिंब" का महकता हुआ अंक 'जन.-मार्च ०६' प्राप्त हुआ. शुक्रिया. जब भी "कथाबिंब" पत्रिका आती है तब मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरी खोयी हुई याददाश्त वापस आ रही हो. मंजु आंटी के आवरण चित्र को देखकर उनसे फ़ोटोग्राफ़ी सीखने को दिल चाहता है.

'जेहाद' कहानी में तारिक असलम ने आपके संपादकीय की तरह एक साथ कई सवालों को उठाया है. घनश्याम जी का यह कथन कि *'हम सभी को समस्त धर्मग्रंथों का अध्ययन करना होगा, तब ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है,'* मेरे ज़हन के आसमान में बार-बार किसी बिजली की तरह कौंध रहा है. अमित जांगड़ा की कहानी 'रूदन' में अभीत का रुदन और महावीर रवांल्टा की कहानी 'भंडारी उदास क्यों थे ?' में भंडारी की उदासी पाठकों की उदासी बन गयी लेकिन हर रूदन और हर उदासी के बाद चेहरे पे मुस्कान आती है. कुंवर आमोद की कहानी 'चैटिंग' में ज़िंदगी के तमाम शेड्स मौजूद हैं.

पूर्ण शर्मा की कहानी 'एक स्वप्न का अंत' इस अंक की महत्वपूर्ण कहानी है जिसे मैंने दो बाद पढ़ा. इस कहानी को पढ़ते वक़्त मुझे 'निराला' की कविता *'वह तोड़ती पत्थर...देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर,'* की याद आ गयी. युग बीत गये लेकिन वह आज भी इलाहाबाद की सड़कों पर पत्थर तोड़ रही है और आज भी उसके चेहरे पर तेज़ाब फेंका जा रहा है. इतनी क्लासिकल कहानी देने पर आपको और पूरणजी को हार्दिक धन्यवाद और बधाई.

समझ में नहीं आता कि "कथाबिंब" के काव्य पक्ष के बारे में क्या कहूं ? तमाम कविताएं एक से बढ़कर एक हैं.

इस पत्रिका के सभी स्थायी स्तंभ महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ उपयोगी भी हैं. हो सके तो "वातायन" को नियमित कर दीजिए. 'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार' का आयोजन कई मायनों में बहुत महत्वपूर्ण है. जो कहानियां इस आयोजन में स्थान नहीं पा सकीं वे भी मील के पत्थर की तरह पाठकों के दिलों पे राज करेंगी. बहरहाल तमाम विजेताओं को मेरी मुबारक बाद.

"कथाबिंब" के अगले अंक का बेसब्री से इंतेज़ार कर रहा हूं क्योंकि इस बार हमारे क्षेत्र के रचनाकार गोवर्धन यादव "आमने-सामने" होंगे.

'नयी राह दिखाते हैं ये प्यार करने वालों को,
ख़ुदा सलामत रखे "कथाबिंब" निकालने वालों को.'

एम. अयाज़ गुड्डू,
वार्ड नं. ११, सरगम, जि. छिंदवाडा, जुन्नारदेव-४८०५५१

"कथाबिंब" का जन.-मार्च ०६ अंक प्राप्त हुआ. अस्वस्थता के कारण शीघ्र प्रतिक्रिया न दे सका, क्षमा प्रार्थी हूं. संपादकीय में आतंकवादी हमले पर आपकी टिप्पणी (मुंबई ब्लास्ट के बाद तो और भी) सटीक लगती है.

श्री जांगड़ा की 'रुदन', कुंवर आमोद की 'चैटिंग' व रवांल्टा की 'भंडारी...' ने प्रभावित किया. डॉ. रामशेष की लघुकथा अच्छी लगी. 'वातायन' में गोविल जी की बातचीत में अपनेपन का अहसास हुआ. काव्यपक्ष, पत्रिका की प्रतिष्ठा के अनुकूल है.

आनंद बिल्थरे,
प्रेमनगर, बालाघाट (म. प्र.) ४८१००१

"कथाबिंब" का जन.-मार्च ०६ अंक ! आवरण पृष्ठ ने आकृष्ठ किया, कुल बावन पृष्ठों में रचनाओं के शब्द फ़ाज़िल नहीं हैं.

पत्रिका के बंद होने की सूचना कोई संपादक क्यों देगा ? यहां तो दो-चार अंक निकाल कर आजीवन संपादक होने का सुख मिलता है. हम क़दम लघु पत्रिकाओं की सूची संदिग्ध है.

इस अंक की कहानियों पर डॉ. अरविंद ने 'कुछ कही, कुछ अनकही' में कह दिया है तो पाठकीय हस्तक्षेप साहित्यिक शिष्टाचार नहीं है. मगर 'जेहाद' कहानी के लिए डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम' की प्रशंसा करना चाहूंगा.

हीरा लाल मिश्र की लघुकथा 'भूख' बिना कहे बड़े अर्थ से समाप्त होती है. इसी को कहते हैं 'देखन में छोटन लगे, घाव करे गंभीर'. आनंद बिल्थरे की लघुकथा 'युग-आवश्यकता' आज का युगदर्शन है. डॉ. वी. रामशेष की लघुकथा 'सार्थक कहानी' छपास के रोगियों के नाम करता हूं.

'कथाबिंब' के प्रधान संपादक डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' के लिए अपने शहर के बेयासी वर्षीय प्रतिष्ठित कवि प्रोफेसर कैलास बिहारी सहाय की इन पंक्तियों -

"बुढ़ाया बीज के सृजन से पहले,
किसी के मन में रहा होगा
फलने से झरने तक की अजस्त्र
यात्रा का यही सफल प्रयोजन,
जो सहस्त्र फलों के लिए
है सरल, सरस प्रस्थान
विरले मनुष्य के लिए है सहज
शांत रस से सजल प्रस्थान."

को उद्धृत करते हुए अगले अंक की प्रतीक्षा करूंगा.

भोलानाथ आलोक,
नया सिपाही टोला, पूर्णियां (बिहार) ८५४३०१

❊ ''कथाबिंब'' का जन.-मार्च ०६ अंक मिला. तारिक असलम की कहानी 'जेहाद' वर्तमान युग में प्रासंगिक है, प्रेरणाप्रद विशेष है. पूर्ण शर्मा 'पूरण' ने अपनी कहानी के माध्यम से अच्छा रेखांकन किया है. कमर रईस, सतीश गुप्ता, भानु प्रकाश की ग़ज़लें पढ़कर अच्छा लगा. सागर-सीपी में डॉ. कृष्ण बिहारी सहल से सुश्री मधु प्रसाद की बातचीत किसी साहित्यकार के लिए संजीवनी ही है. 'आमने/सामने' स्तंभ में महावीर रवांल्टा की आत्मरचना 'अपने भीतर लगता था जैसे कुछ चल रहा है' यथार्थ से ओत-प्रोत है.

इस अर्थप्रधान युग में मानवीय जीवन मूल्यों की रक्षा करती आपकी यह पत्रिका इतिहास के पन्नों में स्थान पा रही है. 'कुछ कही, कुछ अनकही' आपका संपादकीय कई बार पढ़ना पड़ता है. यह आपका सारस्वत अनुष्ठान वंदनीय और अर्चनीय है. बधाई स्वीकारें. गागर में सागर है यह पत्रिका.

✣ **डॉ. हरिप्रसाद दुबे,**

गयादेवी नगर, रामपुर भगन, फैजाबाद (उ. प्र.) २२४२०३

❊ ''कथाबिंब'' का जन.-मार्च ०६ का अंक मिला. क्षमा के साथ मैं एक बात कहना चाहता हूं कि देश में कुछ कहानी लेखक पेशेवर हो गये हैं. चारों तरफ़ वही नाम नज़र आ रहे हैं. वे ही लेखक, वे ही पाठक ! न नये लेखक आगे आ रहे हैं, न पाठक ! इसकी वजह क्या है, इस पर मंथन ज़रूरी है.

आज उन कहानियों के टोटे पड़ गये हैं जो समाज की मुश्किलों से नज़र मिलायें, उसका आईना बनें. तमाम कहानियां ऐसी छपती हैं कि लिखने वाला ही समझ पाता है या कुछ ख़ास नाम उन पर पत्र लिख कर तालियां बजा देते हैं. दलित विमर्श और नारी विमर्श के नाम पर आप कुछ भी लिख दीजिए. संबंध और संवेदनाओं की जड़ों से बात करना मुश्किल-सा लगता है. पहले एक कहानी पढ़ लो वर्षों याद रहती थी. आज स्थिति यह है कि आज पढ़ो और अभी भूल जाते हैं. ऐसा क्यों है ? कहानीकारों को इस पर अवश्य विचार करना चाहिए. लिख लिया, अपनी पीठ थपथपा ली या दो-चार ने प्रशंसा लिख दी, बस ! इस प्रवृत्ति से बचना पड़ेगा.

'कथाबिंब' का प्रयास सबसे अलग है. बड़ी हिम्मत है आज के दौर में किसी पत्रिका को ज़िंदा रखना और उससे ज़्यादा दूभर है कहानी के वजूद को ताक़त देना. आप दोनों काम एक साथ कर रहे हैं. बधाई !

✣ **आनंद शर्मा,**

हक़ीम कन्हैया लाल मार्ग, २०९ बिहारी पुर, बरेली २४०००३

❊ ''कथाबिंब'' का जुलाई-दिसंबर ०५ संयुक्तांक पढ़ा. सभी कहानियां सार्थक और सफल हैं. 'औरत कोई सराय नहीं' एक संघर्षधर्मी स्त्री की कहानी है. कहानी का अंत उतना ही साहसपूर्ण है जितना कथा नायिका का यह कथन ''उसकी कोख किराये का कमरा नहीं है कि मुसाफिर जाते हुए कूड़ा करकट छोड़ गया हो. वह औरत है कोई सराय नहीं.'' 'आज की पांचाली' एक प्रयोगधर्मी शिल्प की कहानी है. यह भी एक स्त्री की अनंत करुण कथा है. समय के साथ स्त्री की त्रासदी नहीं बदली है. 'साधु और बिच्छू की कथा' एक नैतिक कथा का पुनर्प्रयोग है. समय बदल जाने से कथा नहीं बदलती, न कथा के निहितार्थ बदलते हैं. 'इतने पर भी' एक आशंकित अंत के संभावनापूर्ण अंत में परिवर्तन की कथा है. यह कहानी आश्वस्त करती है कि अवमूल्यन के समय में भी कुछ बचे रहने की गुंजाइश हमेशा शेष रहती है. 'मरब्बे' बिलकुल प्रासंगिक व सामयिक कहानी है - जब मेधा पाटकर, सर्वोच्च न्यायालय और नर्मदा बांध और उससे जनित समस्याएं सबके सामने हैं. आमने-सामने में भोला पंडित 'प्रणयी' का आत्मकथ्य एक मामूली आदमी से ग़ैर मामूलीपन में रूपांतरण की गाथा है. डॉ. सतीश दुबे का साक्षात्कार भी एक साधक और तपस्वी का साक्षात्कार है. ग़ज़लों में राजेंद्र वर्मा ने सर्वाधिक प्रभावित किया है. लघुकथाओं में नरेंद्र आहूजा की 'विवेक की बेटी' ने प्रभावित किया. 'टीवी वाली औरत' विज्ञापनों व टी वी के नक़ली संसार पर एक भरपूर प्रहार है. देवेंद्र पाठक की ग़ज़ल भी प्रभावी है. 'दहशत' में वही आशंका है जो डॉ. प्रकाशकांत की कहानी 'इतने पर भी' में है. 'समझौता' शीर्षक को सिद्ध करनेवाली लघुकथा है. गजेंद्र यथार्थ की टिप्पणी पूरक संपादकीय है.

✣ **हितेश व्यास,**

के. आर. ८२, सिविल लाइन्स, कोटा (राज.) ३२४००१

पाठकों / ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

(. . . पृष्ठ ४ से आगे)

यह सिर्फ़ 'जेहाद' नहीं है बल्कि एक अघोषित छापाकर युद्ध है. जिसका उद्देश्य भारत वर्ष को कमज़ोर बनाना है. यह अलग बात है कि हर मुसलमान आतंकवादी नहीं होता किंतु हर आतंकवादी मुसलमान क्यों होता है ? राष्ट्र की सुरक्षा की समस्या को हिंदू-मुसलमान इन दो समुदायों के बीच की समस्या के रूप में देखना ग़लत होगा.

जब कहीं आग लगती है तो अग्निशमन दल के लोग सबसे पहले ऑक्सीजन की आपूर्ति को ख़तम करते हैं. उसी तरह, सर्वप्रथम हमें राष्ट्रीय सुरक्षा को एक राष्ट्रीय संकट घोषित करना होगा. एक आपात्कालीन स्थिति. जिससे निपटने के लिए अगर देशवासियों से आह्वान किया जाये और ऐसे में यदि उनके कुछ अधिकार छिन भी जाते हैं तो भी उन्हें यह मान्य होगा. देश के नागरिकों के लिए युद्ध स्तर पर 'राष्ट्रीय पहचान पत्र' मुहैय्या कराये जायें. इसमें बड़े पैमाने पर कंप्यूटर तकनीकी का इस्तेमाल किया जा सकता है. देश में आने वाले पर्यटकों के वीज़ा के नियम सख़्त किये जायें. बंगलादेश या पाकिस्तान से होने वाली घुसपैठ को पूरी तरह समाप्त करने के लिए दिन-रात लगकर सीमा 'फेन्सिंग' का कार्य पूरा किया जाये. धार्मिक स्थलों (मंदिर व मस्जिदों) के नये निर्माण पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाये. बिना सरकारी अनुज्ञा के मदरसों के निर्माण कर रोक. अनुदान के रूप में विदेशों से आने वाले धन का पूरा हिसाब-क़िताब. इलेक्ट्रॉनिक व प्रिंट मीडिया पर दुर्घटनाओं के वीभत्स चित्र दिखाने पर प्रतिबंध. सामान्य स्थिति बहाल होने तक कुछ समय के लिए चुनाव प्रक्रिया भी स्थगित रह सकती है.

आज़ादी के बाद से भारत की धरती पर कई युद्ध हुए हैं. हर बार, प्रत्येक धर्म और मज़हब के अनुयायियों ने कंधे से कंधे मिड़ा कर देश की रक्षा की है. राष्ट्र है तो समाज है, समाज सुरक्षित है तो व्यक्ति भी चैन की सांस ले सकता है. कोई धर्म या मज़हब राष्ट्र से बड़ा नहीं हो सकता है.

अरविंद

: प्राप्ति - स्वीकार :

क्या पता कामरेड मोहन (उपन्यास) : **संतोष चौबे**, मेघा बुक्स, एक्स-११, नवीन शाहदरा, नयी दिल्ली-११००३२. मू. ४००/-
अनुसूया (उपन्यास) : **जगदीश प्रसाद सिंह**, किताब घर, २४/४८५५, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २२५/-
सुरजू के नाम (उपन्यास) : **जयवंती डिमरी**, भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३. मू. ६५/-
बादाम का पेड़ (कथा संग्रह) : **गुरुबचन सिंह**, किताब घर, २४/४८५५, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १२०/-
फ़रिश्ता (क. सं.) : **अंजना 'सवि'**, आशीष प्रकाशन, बालाघाट (म. प्र). मू. १५०/-
कथा-दर्पण (क. सं.) : **सं. पुष्पपाल सिंह**, किताब घर, २४/४८५५, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १००/-
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-कहानी के प्रमुख स्तंभ (परिचय) : **डॉ. परमलाल गुप्त**, पीयूष प्रकाशन, सतना (म. प्र.). मू. ६०/-
साहित्य, साहित्यकार और प्रेम (गद्य) : **गोविंद मिश्र**, वाणी प्रकाशन, २१-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १७५/-
अधार्मिक (गद्य) : **आलोक भट्टाचार्य**, इंदु प्रकाशन, १८ अंबिका निवास, पांडुरंगवाड़ी, डोंबिवली-४२१२०१. मू. २००/-
पत्रकारिता कोश-२००६ : **सं. मो. आफताब आलम**, भारत पब्लिकेशन, ४-जे-७, शिवाजी नगर, गोवंडी, मुंबई-४०००४३. मू. १००/-
बाज़ार (ल. क. संग्रह) : **अरुण कुमार**, पूनम प्रकाशन, ६-B, कौशिकपुरी, पुराना सीलमपुर, दिल्ली-११००३१. मू. १००/-
बीस सुरों की सदी (कविता संग्रह) : **विद्याभूषण**, प्रकाशन संस्थान, ४७१५/२१, दयानंद मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली ११०००२. मू. १००/-
अभिलाषा (क. सं.) : **कृष्ण कुमार यादव**, शैवाल प्रकाशन, चंद्रावती कुटीर, दाऊदपुर, गोरखपुर-२७३००१. मू. १६०/-
शब्द प्रभात (काव्य) : **सं. सी. एल. सांखला**, दुष्यंत प्रकाशन, टाकरवाड़ा, कोटा (राज.). मू. १५०/-
कैसी हवा चली (क. सं.) : **सुधा जैन**, पूनम प्रकाशन, ६-बी कौशिक पुरी, पुराना सीलमपुर, दिल्ली ११००३१. मू. १२५/-
संस्कार होना सही (दोहा-सतसई) : **ए. बी. सिंह**, मयंक प्रकाशन, २१९९/६४, नाईवाला, करौलबाग, नयी दिल्ली-११०००५. मू. १९५/-
बूंद-बूंद बादल (हाइकू) : **राजेंद्र वर्मा**, युति प्रकाशन, ३/४७३, विकासनगर, लखनऊ-२२६०२२. मू. ३०/-
मोनालिसा की मुस्कान (हाइकू) : **नीलमेंदु सागर**, इलावर्त प्रकाशन, कृष्ण देवालय, शिव गार्डन, सादतपुर, दिल्ली-११००९४. मू. १२५
एक तिल्ली (हाइकू) : सदाशिव कौतुक, साहित्य संगम, श्रमफल, १५२० सुदामा नगर, इंदौर-४५२००७. मू. १२०/-

'किरण देवी सराफ़ ट्रस्ट' (मुंबई) के सौजन्य से प्रकाशित पुस्तकें

निकुंज (का. सं.) : **कुलवंत सिंह**. मू. ५०/-, **अंतिम विराम** (क. सं.) : **डॉ. अक्षयवरनाथ दुबे**. मू. १००/-,
कौन है वो दूसरा (काव्य) : **प्रशांत मिश्रा**, मू. ६०/-, **बिखरे मोती** (क. सं.) : **जनार्दन मणि त्रिपाठी**, मू. ४०/-,
मिलके कदम बढ़ायें (क. सं.) : **चाचा चौधरी**, मू. १०१/-.

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

आजीवन सदस्यों के हम विशेष आभारी हैं. जिनके सहयोग ने हमें ठोस आधार दिया है. सभी आजीवन सदस्यों से निवेदन है कि वे एक या दो या अधिक लोगों को आजीवन सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव हो तो कृपया हमें लिखें.

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, मुंबई
५) डॉ. ए. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, मुंबई
११) श्री अमर ठकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) डॉ. राजनारायण पांडेय, मुंबई
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैया लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, दिल्ली
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कोलकाता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, अनपरा, सोनभद्र
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम, सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, मुंबई
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, नवी मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह विष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, बुलंदशहर
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, पटना
५७) श्री मनोहर लाल टाली, मुंबई
५८) श्री एन. एम. सिंघानिया, मुंबई
५९) श्री ओ. पी. कानूनगो, मुंबई
६०) डॉ. ज. वी. यख्मी, मुंबई
६१) डॉ. अजय शर्मा, जालंधर
६२) श्री राजेंद्र प्रसाद 'मधुबनी', मधुबनी
६३) श्री ललित मेहता 'जालौरी,' कोयंबटूर
६४) श्री अमर स्नेह, मीरा रोड, ठाणे
६५) श्रीमती मीना सतीश दुबे, इंदौर
६६) श्रीमती आभा पूर्वे, भागलपुर
६७) श्री ज्ञानोत्तम गोस्वामी, मुंबई
६८) श्रीमती राजेश्वरी विनोद, नवी मुंबई
६९) श्रीमती संतोष गुप्ता, नवी मुंबई
७०) श्री विशंभर दयाल तिवारी, मुंबई
७१) श्री अभिषेक शर्मा, नवी मुंबई
७२) श्री ए. बी. सिंह, निंबोहड़ा, चितौड़गढ़
७३) श्री योगेंद्र सिंह भदौरिया, मुंबई
७४) श्री विपुल सेन 'लखनवी', मुंबई
७५) श्रीमती आशा तिवारी, मुंबई
७६) श्री गुप्त राधे प्रयागी, इलाहाबाद
७७) श्री महावीर रवांल्टा, बुलंदशहर
७८) श्री रमेश चंद्र श्रीवास्तव, इलाहाबाद
७९) डॉ. रमाकांत रस्तोगी, मुंबई
८०) श्री महीपाल भूरिया, मेघनगर, झाबुआ (म. प्र.)
८१) श्रीमती कल्पना बुद्धदेव 'व्रज', राजकोट
८२) श्रीमती लता जैन, नवी मुंबई
८३) श्रीमती श्रुति जायसवाल, मुंबई
८४) श्री लक्ष्मी सरन सक्सेना, कानपुर
८५) श्री राजपाल यादव, कोलकाता
८६) श्रीमती सुमन श्रीवास्तव, नयी दिल्ली
८७) श्री ए. असफल, भिंड (म. प्र.)
८८) डॉ. उर्मिला शिरीष, भोपाल
८९) डॉ. साधना शुक्ला, फतेहगढ़

(अगले पृष्ठ पर जारी)

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य...

९०) डॉ. त्रिभुवन नाथ राय, मुंबई
९१) श्री राकेश कुमार सिंह, आरा (बिहार)
९२) डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी, भुज-कच्छ
९३) डॉ. उमाकांत बाजपेयी, मुंबई
९४) श्री नेपाल सिंह चौहान, नाहरपुर (हरि.)
९५) श्री रूप नारायण तिवारी 'वीरान', बिलासपुर
९६) श्री जे. पी. टंडन 'अलौकिक', फ़र्रुख़ाबाद
९७) श्री शिव ओम 'अंबर,' फ़र्रुख़ाबाद
९८) श्री आर. पी. हंस, मुंबई
९९) सुश्री अल्का अग्रवाल सिगतिया, मुंबई
१००) श्री मुन्नू लाल, बलरामपुर (उ. प्र.)
१०१) श्री देवेंद्र कुमार पाठक, कटनी
१०२) सुश्री कविता गुप्ता, मुंबई
१०३) श्री शशिभूषण बडोनी, मसूरी
१०४) डॉ. वासुदेव, रांची
१०५) डॉ. दिवाकर प्रसाद, नवी मुंबई
१०६) सुश्री आभा दवे, मुंबई
१०७) सुश्री रश्मि सक्सेना, मुंबई
१०८) श्री मुनी राज सिंह, मुंबई
१०९) श्री प्रताप सिंह सोढ़ी, इंदौर
११०) श्री सुधीर कुशवाह, ग्वालियर
१११) श्री राजेंद्र कुमार सक्सेना, दिल्ली
११२) श्री एन. के. शर्मा, नवी मुंबई
११३) श्रीमती मीरा अग्रवाल, दिल्ली
११४) श्री कुलवंत सिंह, मुंबई
११५) डॉ. राजेश गुप्ता, भुसावल
११६) श्री साहिल, वेरावल (गुज.)
११७) डॉ. माधुरी छेड़ा, मुंबई
११८) सुश्री मंगला रामचंद्रन, इंदौर
११९) श्री पवन शर्मा, जुन्नारदेव, छिंदवाड़ा (म. प्र.)
१२०) डॉ. भाग्यश्री गिरी, पुणे
१२१) श्री तुहिन मिश्रा, मुंबई
१२२) सुश्री मधु प्रसाद, अहमदाबाद
१२३) श्रीमती मंजु लाल, दिल्ली
१२४) श्री सतीश गुप्ता, कानपुर
१२५) डॉ. बी. जे शेट्टी, नवी मुंबई
१२६) श्रीमती कमलेश बख़्शी, मुंबई
१२७) डॉ विश्वंबर नाथ सक्सेना, मुंबई
१२८) श्री युगेश शर्मा, भोपाल
१२९) श्री सलीम अख़्तर, गोंदिया (महा.)
१३०) डॉ लक्ष्मण प्रसाद, जमशेदपुर
१३१) श्री मनोज सिन्हा, हज़ारीबाग (झारखंड)
१३२) श्री प्रशांत कुमार सिन्हा, देवघर (झारखंड)
१३३) श्रीमती मधु प्रकाश, मुंबई
१३४) श्री कृष्ण राघव, मुंबई
१३५) श्री सलाम बिन रज़ाक, मुंबई

छोटे बच्चों के लिए धमाका
कहानियोंका खजाना... नवनीत का नजराना...

(१) चटपटी कहानियाँ	(भाग १ से ४ का सेट)	(१२) महाकाव्य रामायण	(बच्चों के लिए)
(२) कहानियाँ ही कहानियाँ	(भाग १ से ४ का सेट)	(१३) रामायण के अमर पात्र	(भाग १ से ४ का सेट)
(३) अनुपम कहानियाँ	(भाग १ से ४ का सेट)	(१४) महाभारत के अमर पात्र	(भाग १ से ५ का सेट)
(४) मोहक कहानियाँ	(भाग १ से ४ का सेट)	(१५) पंचतंत्र	(भाग १ से ५ का सेट)
(५) कहानियों का ख़जाना	(भाग १ से ४ का सेट)	(१६) हितोपदेश	(भाग १ से ५ का सेट)
(६) विकास रंगबिरंगी कहानियाँ	(सात पुस्तकों का सेट)	(१७) इसपनीति	(भाग १ से ५ का सेट)
(७) चतुर बीरबल	(भाग १ से ४ का सेट)	(१८) तेनालीराम	(भाग १ से ६ का सेट)
(८) परी-कथाएँ	(भाग १ से ४ का सेट)	(१९) मुल्ला नसरुद्दीन	(भाग १ से ५ का सेट)
(९) विकास बोधकथाएँ	(भाग १ से ६ का सेट)	(२०) विक्रम-वेताल	(भाग १ से ५ का सेट)
(१०) अरेबियन नाइट्स	(भाग १ से ८ का सेट)	(२१) सिंहासन बत्तीसी	(भाग १ से ५ का सेट)
(११) महाकाव्य महाभारत	(बच्चों के लिए)		

बालकथाओं की उपर्युक्त पुस्तकें अँग्रेजी, मराठी और गुजराती भाषाओं में भी उपलब्ध हैं।

नवनीत पब्लिकेशन्स (इंडिया) लिमिटेड
नवनीत भवन, भवानीशंकर रोड, दादर, मुंबई - २८.
(फोन : ५६६२ ६४०० • फॅक्स : ५६६२ ६४७०)

आपके बच्चे की वर्षगाँठ हो या परिवार में कोई शुभ अवसर, बच्चों को कहानियों के ये सेट भेंट के रूप में दीजिए। इससे आपको 'एक सुंदर कार्य' करने का संतोष प्राप्त होगा।

NAVNEET®
Where knowledge is wealth™

NEW PURCHASES? REFURBISHING YOUR HOME? BUSINESS EXPANSION?
JANAKALYAN MAKES IT EASY
JAN-NIWAS
Housing Loan for purchase of a House/ Flat or purchase of a Plot & construction thereon.
ANTARANG
Loans for House repairs and House renovations.
JAN-ADHAR
Loans for purchase of Consumer Durables/Furniture etc. or for Medical /Travel Expenses.
MORTGAGE LOAN
Loans for various purposes against Immovable Properties.
VEHICLE-LOAN
Loans for purchase of new / second hand Car or Two / Three wheeler.
UDYOGINI
Loan Scheme for Women Entrepreuners
JAN VYAPAR
Loans for Small & Medium Entrepreneurs (SME), Small Scale Industries(SSI), Corporate Loans
Attractive Rates of Interest
Flexible Loan Schemes
Convenient EMI options
Hassle Free Documentation
Personalised Banking Service
For more information, please get in touch with your nearest Janakalyan Bank branch, today!
जनकल्याण
JANAKALYAN
SAHAKARI BANK LTD.
(Scheduled Bank)
The Bank with a Homely Touch
Head Office : Vivek Darshan,140, Sindhi Society, Chembur, Mumbai - 400 071 Tel.: 2522 2582 Fax: 2523 0266
*Conditions apply
L'amour, Mumbai
Rendering Personalised Banking Service through a network of 25 Branches spread across Mumbai and its outskirts.

With Best Compliments From :

WEBWARE TECHNOLOGIES PVT. LTD.

Plot No. AM 2/4, Prabhakar Bldg.,
Wagle Industrial Area,
L.B.S. Marg, Wagle Check Naka,
Thane (West) - 400 604.

Phone No.: 022-2583 2144 - 45
Website : www.webwaretech.com
Email : rajbhat@webwaretech.com

T. A. CORPORATION

8, Dewan Niketan, Chembur Naka, Chembur, Mumbai - 400 071.
✆ (Off) : + 91-22-2522 3613 / 5597 4515 • Fax : + 91-22-25223631
Email : tac@vsnl.com • Web : www.chemicalsandinstruments.com

-: Offers :-

- **H.P.L.C. GRADE CHEMICALS**
- **SCINTILLATION GRADE CHEMICALS**
- **GR GRADE CHEMICALS**
- **BIOCHEMICALS**
- **STANDARD SOLUTIONS**
- **HIGH PURITY CHEMICALS**
- **ELECTRONIC GRADE CHEMICALS**
- **LR GRADE CHEMICALS**
- **INDICATORS**
- **LABORATORY INSTRUMENTS**

Manufactured by :

PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch, Gujarat,
✆ : 02646-272332
email : response@prabhatchemicals.com
website : www.prabhatchemicals.com

Stockist of :

- **Sigma, Aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A)**
- **Riedel (Switzerland)**
- **Merck (GDR)**
- **Lancaster (UK)**
- **Strem (UK)**

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ ६२८४.